अनन्य

'हिंदी की नयी उड़ान'

मासिक पत्रिका

अगस्त-2022

अनन्य

'हिंदी की नयी उड़ान'

प्रबंध संपादक
अनूप भार्गव

संपादक
डॉ. जगदीश व्योम

कला संपादक
विजेंद्र एस. विज

संपादन सलाहकार
डॉ० हरीश नवल

भारतीय कौंसलावास, न्यूयॉर्क की हिंदी पत्रिका

अनन्य
मासिक पत्रिका, अगस्त 2022

भारतीय कौंसलावास, न्यूयॉर्क की हिंदी पत्रिका

प्रबंध संपादक
अनूप भार्गव

संपादक
डॉ॰ जगदीश व्योम

कला संपादक
विजेन्द्र एस. विज

संपादन सलाहकार
डॉ॰ हरीश नवल

तकनीकी सलाहकार
बालेन्दु शर्मा दाधीच

संपादन सहयोग
स्वरांगी साने
आभा खरे

व्यवस्था
अमित खरे
गीता घिलोरिया

रेखांकन : इंटरनेट से साभार

सर्वाधिकार सुरक्षित
पत्रिका में प्रकाशित सामग्री के अन्यत्र उपयोग हेतु लेखक / प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है।
प्रकाशित सामग्री हेतु सम्बंधित लेखक पूरी तरह से उत्तरदायी होंगे।

संपर्क :
रचनाकार अपनी रचनाएँ अनन्य में प्रकाशनार्थ यहाँ भेजे
sampadak.ananya@gmail.com

पाठक अपनी प्रतिक्रियाएँ और सुझाव यहाँ भेजें
pratikriya.ananya@gmail.com

आवरण चित्र : विजेन्द्र एस. विज
Delusion at midnight
8x11 Inch, Ink
Watercolor on paper

इस अंक में

आइकॉन पर क्लिक करने से आप ऑडिओ रिकॉर्डिंग सुन सकते हैं।

आइकॉन पर क्लिक करने से आप विडियो देख सकते हैं।

अनुक्रम

पृष्ठ संख्या

मेरी बात :
अनूप भार्गव, प्रबंध संपादक 06

गीत/नवगीत :
जब तुम आते हो / देहरी पर नहीं आये - डॉ० ओमप्रकाश सिंह 07
भूल गये जीतना / मौसम का डाकिया - शशि पाधा 08

कहानी : कैलिप्सो / तेजेन्द्र शर्मा 09

ग़ज़ल :
-ओमप्रकाश यती 15
-गौतम राजऋषि 17

लघुकथा : 19
रोटी का गणित / अन्नदा पाटनी 21
दूसरा चेहरा / सुकेश साहनी

गीत/नवगीत : प्रवासी गीत / डॉ. विनोद तिवारी 22

हाइकु कविताएँ : डॉ. विश्व दीपक बमोला 'दीपक' 24

व्यंग्य : उनका रूठना / ज्ञान चतुर्वेदी 25

विदेशी डायरी : मास्को से : प्रगति टिपणीस 29

हँसिकाएँ : डॉ. सरोजनी प्रीतम 32

कला : कला और शिल्प : प्रमाणिकता, प्रासंगिकता / अमित कल्ला 33

लेख : ओ.टी.टी ने. बदला सिनेमा का आसमान / अविनाश त्रिपाठी 36

धरोहर : बीती विभावरी / जयशंकर प्रसाद 40

व्यंग्य : मोबाइल चौपाल / अनूप कुमार शुक्ल 41

कहानी : सलीम साहब, काश आप हमारे संपादक होते / प्रियदर्शन 47

कविता :
तुम्हारा अपना नाम क्या है गांधारी? / डॉ. राजम नटराजन पिल्लै 58

तकनीकी / ज्ञान-विज्ञान : साल के 109 दिन मोबाइल के खाते में! / बालेन्दु शर्मा दाधीच 60

चित्र और चित्रकार : अमित कल्ला पृष्ठ भाग / 62

मेरी बात...

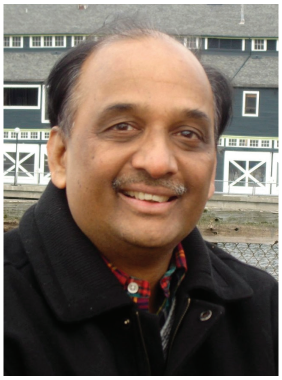

पिछले महीने न्यूयॉर्क-स्थित भारतीय कौंसलावास की हिंदी पत्रिका 'अनन्य' के प्रवेशांक पर आपके स्नेह और अपनत्व की जो वैश्विक बौछार हुई, उससे हमारी टीम उत्साहित, कृतज्ञ और ऊर्जावान है!

हमने प्रवेशांक के लोकार्पण के समय कहा था कि यह सिर्फ़ पहला कदम है, हमारा स्वप्न इस प्रयास को हर देश में दोहराने का है। उस समय हमें पता नहीं था कि यह स्वप्न इतनी जल्दी साकार होने लगेगा।

'अनन्य' पत्रिका का वैश्विक संस्करण अपने वर्तमान स्वरूप में हर माह की पहली तारीख़ को आप के सामने आएगा, साथ ही 15 अगस्त से हम पाँच अन्य देशों से 'अनन्य' का स्थानीय संस्करण निकालने जा रहे हैं। ये संस्करण पूर्णत: उन देशों की रचनाओं को समर्पित होंगे, उन्हीं देशों के स्थानीय प्रयासों से निकाले जाएँगे और प्रत्येक माह की 15 तारीख़ को आपके समक्ष होंगे। पहले दौर में हमारे साथ ऑस्ट्रेलिया, इंगलैंड, रूस, सिंगापुर और संयुक्त अरब अमीरात जुड़े हैं। आशा है कि धीरे-धीरे हम नए देशों को अपने साथ जोड़ते जाएँगे।

हमारा स्वप्न है कि दुनिया के हर देश में 'हिंदी' का एक, छोटा सा ही सही, बीज ज़रूर बोएँ। यह बीज एक स्थानीय मासिक पत्रिका के रूप में शुरु होगा और कालांतर में इस बीज से पल्लवित वृक्ष में उस देश की कला, संस्कृति, प्रवासी साहित्य, अनुवाद, स्थानीय अनुभव, त्योहार और अन्य आयामों की हरित शाखाओं का विकास हो सकेगा - यह हमारा दूरगामी स्वप्न है। अनन्य का मंच इन सब स्थानीय प्रयासों को एक वैश्विक प्रांगण देगा – यह हमारा विश्वास है।

हम जानते हैं कि यह एक बहुत बड़ा स्वप्न है, हमारे पास साधन भी नहीं है, लेकिन एक बात हम फिर से दोहराएँगे कि हमारे पास विचारों में ईमानदारी और स्पष्टता है, समर्थ और समर्पित टीम है, बहुत से मित्र और शुभ चिंतक हैं! हमें किसी से प्रतिस्पर्धा नहीं है और सबके साथ मिल कर काम करने की ललक है।

हम नहीं जानते कि हम सफल होंगे या नहीं, लेकिन हम यह जानते हैं कि 'सफलता या असफलता' का पता हमें तभी चलेगा जब हम 'प्रयत्न' करेंगे।

आप का स्नेह और सहयोग हमें ऊर्जा देगा। आप ही हमारी अनन्य शक्ति हैं!

अनूप भार्गव
प्रबंध संपादक

डॉ० ओमप्रकाश सिंह

उत्तरागौरी, रायबरेली (उ०प्र०) में जन्म। सेवानिवृत्त एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष हिंदी विभाग, बैसवारा पी.जी. कालेज, लालगंज, रायबरेली। वरिष्ठ साहित्यकार, समीक्षक एवं सुप्रसिद्ध नवगीतकार। नवगीत पर विशेष कार्य। विभिन्न विधाओं की 35 से अधिक पुस्तकें प्रकाशित

ईमेल - opbaiswara@gmail.com

जब तुम आते हो

महक उठे मन
फिर गुलाब-सा
जब तुम आते हो

प्यासी आँखें
व्याकुल सपने
मुस्काती बातें
पीड़ा की नगरी में होतीं
काजल-सी रातें
मगर न आते
शब्द होंठ पर
जब तुम आते हो

संशय की
गूँगी धरती पर
सच के अंकुर हैं
और कभी बेसुर भी
लगते वीणा के सुर हैं
संवेदना
थिरक उठती है
जब तुम आते हो
कभी समर्पण

लगता जैसे
मोम पिघलता है
बादल के सीने पर कोई
आग उगलता है
फिर मधुमास
मचल जाता है
जब तुम आते हो।

■

देहरी पर नहीं आये

हवा आयी
गंध आयी
गीत भी आये
पर तुम्हारे पाँव
देहरी पर नहीं आये

अब गुलाबी होंठ से
जो प्यास उठती है
वह कँटीली डालियों पर
साँस भरती है
नील नभ पर
अश्रु-सिंचित
फूल उग आये
पर तुम्हारे पाँव....

तितलियों की
धड़कने
चुभती लताओं पर
डोलती चिनगारियाँ
काली घटाओं पर
इन्द्रधनु-सा
झील में
कोई उतर आये
पर तुम्हारे पाँव....

झर रहे हैं चुप्पियों की
आँख से सपने
फिर हँसी के पेड़ की
छाया लगी डसने
शब्द आँखों से
निचुड़ते
आग नहलाये
पर तुम्हारे पाँव...

■

-डॉ० ओमप्रकाश सिंह

शशि पाधा

वर्जिनिया में रह रहीं शशि पाधा कई विधाओं में लम्बे समय से लेखन से जुड़ी हुई हैं। उनकी अब तक सात पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। देश-विदेश के कई सम्मानों से सम्मानित हैं। लगभग 25 वर्ष तक भारत और यू. एस. में शिक्षण कार्य किया।

ईमेल - shashipadha @gmail.com

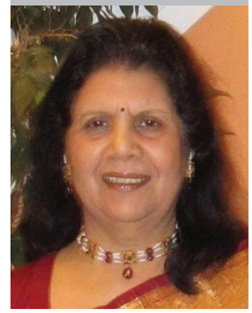

भूल गये जीतना

ज़िन्दगी की दौड़ में
भागते-भागते
भूल गये जीतना
हारते-हारते

मोड़ थे, पड़ाव थे
हिम्मतें भी साथ थीं
दिख रहीं थीं मंजिलें
दो कदम की बात थी
हम वहीं खड़े रहे
अवसरों को टालते
भूल गये...

पंछियों-सा वक्त फिर
पंख बाँध उड़ गया
बहेलियों की आँख में
धूल झोंक मुड़ गया
जाल ही उलझ गया
डोरियों को नापते
भूल गये...

नसीहतें, हिदायतें
ठीक से सुनी नहीं
सही ग़लत के फेर में
राह भी चुनी नहीं
रह गये ठगे-ठगे
भरम अनेक पालते
भूल गये....

■

मौसम का डाकिया

एक ख़त बंद दे गया
मौसम का डाकिया,
भीनी सुगंध दे गया
मौसम का डाकिया

नाम ना, पता नहीं
ना कोई मोहर लगी,
द्वार पर खड़ी–खड़ी
रह गई ठगी–ठगी
काँपते हाथों में
इक उमंग दे गया
मौसम का डाकिया

किस दिशा, किस छोर में
जा छिपूँ, ले ऊड़ूँ
आँचल की ओट में
बार–बार मैं पढ़ूँ
मौसमी गीत का
राग-छंद दे गया
मौसम का डाकिया

मीत कोई देश से
क्या मुझे बुला रहा
बिन लिखे अक्षरों, से
क्यों मुझे रुला रहा
अधरों पे मुस्कान की
इक सौगंध दे गया
मौसम का डाकिया

अधखुली परतों में
छिपी फूल-पंखुड़ी
देश-काल लाँघ कर
याद कोई आ जुड़ी
मौन पतझार में
रुत वसंत दे गया
मौसम का डाकिया

■

-शशि पाधा

तेजेन्द्र शर्मा

जगरांव, पंजाब में जन्म। वर्तमान में यू. के. में निवास। ब्रिटिश रेल में कार्यरत। सत्रह कहानी संग्रह तथा तीन ग़ज़ल एवं कविता संग्रह। लंदन से प्रकाशित एकमात्र पत्रिका पुरवाई का संपादन। अनेक सम्मान से सम्मानित।

ईमेल - tejinders@live.com, kathauk@gmail.com

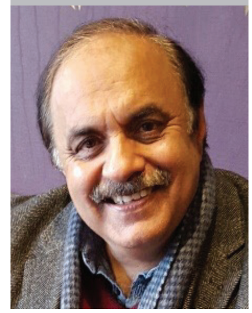

कैलिप्सो

-तेजेन्द्र शर्मा

कैलिप्सो यहाँ क्यों बैठती है? कब से बैठती है? इसका दुनिया में कोई अपना है या नहीं? उसे बहुत-सी कहानियाँ याद आने लगीं। चार्ल्स डिकन्स का नॉवल ग्रेट एक्सपेक्टेशन्स याद आया...

वह आज भी वहाँ नहीं बैठी। पिछले छः महीने से नरेन उसे हेण्डन सेन्ट्रल अण्डर ग्राउण्ड स्टेशन के बाहर क्वीन्स रोड के बस स्टॉप के पीछे बैठते देख रहा है। उसके बाल खिचड़ी रंग के हैं, जिसे अंग्रेज़ लोग सॉल्ट एण्ड पैपर लुक कहते हैं। दूर से देखने पर पता ही नहीं चलता कि किस आयु-वर्ग की होगी। उसे वैसे ही अंग्रेज़ औरतों की उम्र का अन्दाज़ लगाने में बहुत मुश्किल होती है।

नरेन सोचता है कि उसका नाम क्या हो सकता है? अंग्रेज़ी लड़कियों के कई नाम उस चेहरे पर फ़िट करने का प्रयास करता है। जूली, ऑड्री, क्लेयर, शिनेड... सभी नाम सोचता है... मगर नहीं... भला ऐसे आकर्षक चेहरे पर जाने-पहचाने नाम कैसे चिपका देता। फिर भी कोई नाम तो देना था। भला उसके बारे में सोचे तो कैसे? किसी से बात करे तो क्या कहे? नरेन ने उसका नामकरण भी कर दिया- कैलिप्सो, एटलस की बेटी। ग्रीक भाषा में उसका अर्थ होता है- वह जो कुछ छिपाए। यह औरत तो अपने भीतर न जाने क्या-क्या छिपाए बैठी है? कैलिप्सो अगर समुद्र की देवी थी तो नरेन की कैलिप्सो रेल्वे की देवी कही जा सकती है। हेण्डन सेंट्रल स्टेशन की रेल लाइन के ऊपर बने पुल पर अपने ही बैग अपने नीचे रख बैठी रेल्वे की देवी- रेल्वे निम्फ़!

कैलिप्सो यहाँ क्यों बैठती है? कब से बैठती है? इसका दुनिया में कोई अपना है या नहीं? उसे बहुत-सी कहानियाँ याद आने लगीं। चार्ल्स डिकन्स का नॉवल ग्रेट एक्सपेक्टेशन्स याद आया और याद आयी मिस हैविशाम, जिसका प्रेमी विवाह की

शाम अपनी दुल्हन से विवाह रचाने आया ही नहीं; जिसने अपने घर की हर चीज़ उस शाम के नाम स्थिर कर दी थी। उसके घर की घड़ी भी उसी समय पर रोक दी गई थी, जब उसके प्रेमी को उसे दुल्हन बनाने आना था। उसे याद आयी अपने मित्र की कहानी ग्रेसी रेफ़ल जिसके पति ने उसे लूटकर सड़क पर घिसटने को छोड़ दिया था। वह बेचारी बरसों तक मुंबई के चर्चगेट स्टेशन के बाहर पागलों की तरह गुदड़ी में लिपटी बैठी रहती।

नरेन वापस अपने बचपन में दिल्ली के पुराने रोहतक रोड, किशनगंज के डिस्पेन्सरी बस स्टॉप तक पहुँच गया। उसी डिस्पेन्सरी में एक नर्स काम किया करती थी। साँवली-सलोनी उस नर्स का नाम अनामिका था। अचानक किसी के प्रेम में उसका दिमाग़ी संतुलन बिगड़ गया था। उसके प्रेमी ने उसे गर्भवती करके शादी करने से इंकार कर दिया था। अनामिका ने दोस्तों की राय पर बच्चा गिरवा लिया, मगर उस सदमे को बरदास्त नहीं कर पायी। नौकरी छूट गयी। वह बिना नहायी, उलझे बाल, फटी रजाई, मैल से गन्दी कोहनियाँ, चिकट्ट पाँव में गहरी बिवाइयाँ लिये उस बस स्टॉप पर आ गयी।

नरेन सोचता है, क्या कैलिप्सो के साथ भी ऐसा ही कुछ हुआ होगा? वह शायद चाहता भी है कि इस महिला के साथ कुछ ऐसा ही हुआ हो; जिसे वह रोमैन्टिसाइज़ कर सके।

नरेन सोचता है, क्या कैलिप्सो के साथ भी ऐसा ही कुछ हुआ होगा? वह शायद चाहता भी है कि इस महिला के साथ कुछ ऐसा ही हुआ हो; जिसे वह रोमैन्टिसाइज़ कर सके। एक दिन तो वह बस स्टॉप से उस रहस्यमयी चेहरे की तरफ़ बढ़ने लगा। वह चाहता था कि महसूस कर सके कि कैलिप्सो नहायी-धोयी साफ़-सुथरी महिला है, या फिर वह भी अनामिका की तरह बू मारता शरीर मात्र है।

उसके पास से गुज़रता नरेन चोर-निगाह से देखने का प्रयास करता है कि कहीं यह सीधी-सादी भिखारिन तो नहीं? मगर वह तो अच्छे भले कपड़े पहने है। नीले फूलोंवाला टॉप और गहरी नीले रंग की जीन्स के साथ एडिडॉस के जूते पहने एक नारी भला भिखारिन कैसे हो सकती है? कैलिप्सो को कनखियों से देखता नरेन बस स्टॉप से उस तक आहिस्ता-आहिस्ता चक्कर लगाता रहा।

कैलिप्सो के पास एक लाते कॉफ़ी का पेपर गिलास रखा था। गिलास कोस्टा कॉफ़ी का था: यानि कि वह दो पाउण्ड पैंतीस पैंस की कॉफ़ी ख़रीदने की कूवत रखती है, तो पैसे कहाँ से लाती होगी? यह भी तो हो सकता है कि यह कोई अपनी मर्ज़ी वाली होमलेस हो, जो अपने परिवार के साथ रहना ही न चाहती हो। मगर इसके परिवार में और कौन-कौन होगा? क्यों यह अपने परिवार के साथ नहीं रहना चाहती? अंग्रेज़ लोगों की सोच भारतीय सोच से अलग होती है। उन्हें निजी स्वतन्त्रता बहुत प्यारी होती है। न जाने ऐसी क्या बात होगी जो उसे इस बस स्टॉप के पीछे रेल के पुल के ऊपर बैठने को मजबूर करती है।

उसे लगने लगा है कि वह कैलिप्सो में बहुत अधिक रुचि लेने लगा है। कहीं सीमा को पता चल गया, तो वह ज़रूर बुरा मान जाएगी। अगर सीमा न होती तो वह कभी इस बस स्टॉप पर आता ही नहीं। सीमा हेण्डन में ही रहती है, शेरवुड रोड में उसका बड़ा-सा घर है। एक बेटी है। तलाक़शुदा है। नाटक में अभिनय का शौक़ है। नरेन के नाटक में अभिनय करते-करते नरेन को अपने दिल में जगह दे बैठी है।

नरेन केन्टन लाइब्रेरी के बस स्टॉप से 183 नम्बर की बस में बैठकर क्वीन्स रोड के हेंडन सेन्ट्रल के बस स्टॉप तक केवल सीमा से मिलने आता है। सीमा से उसका प्रेम कोई तीन-साढ़े तीन वर्ष पुराना है। वह आमतौर पर सीमा से पहले ही बस स्टॉप पर आकर खड़ा हो जाता है। सीमा अपनी हॉण्डा एकॉर्ड पर आती है और नरेन को अपने साथ ले जाती है। दोनों किसी रेस्टॉरेण्ट में बैठकर कॉफ़ी पीते हैं; कभी-कभी पैनीनी खाते हैं, तो कभी कैरट केक। आजकल सीमा हनीमून नाटक की स्क्रिप्ट पढ़ रही है। नरेन ने ही लिखी है स्क्रिप्ट!

नरेन जानता है कि सीमा उसे लेकर बहुत हक़ की भावना रखती है। ईर्ष्या की हद तक उसे प्यार करती है। वह भी अपना बाक़ी जीवन सीमा के साथ ही बिताने के सपने देखता है। मगर अपने भीतर के लेखक से कैसे लड़े। उसके भीतर का लेखक कैलिप्सो के बारे में जानने को उत्सुक है। उसे बस इतना ही समय मिलता है। मन में कहीं इच्छा भी जागती है कि किसी दिन कैलिप्सो से आकर बात करे। उसके जीवन में झाँक कर देखे। कितना ख़ूबसूरत नाटक लिखा जा सकता है, और फिर यही रोल सीमा को करने को कहेगा। सीमा के चेहरे पर सॉल्ट एण्ड पैपर लुक वाले बाल कैसे लगेंगे? बहुत ख़ूबसूरत लगेगी। फिर सोचता है कि सीमा से एक दिन बात कर ही लेगा।

वह कभी सीमा को समझा नहीं पाया कि नाटक के क्षेत्र में कलाकार लोग एक-दूसरे को सहज रूप से गले लगा लेते हैं। मगर सीमा को समझाना आसान भी तो नहीं। फिर अपनी बात को सही साबित करने के लिये कह देगी-

नरेन कैलिप्सो को बस उतनी देर ही देख पाता है जितनी देर वह सीमा की प्रतीक्षा करता है। क्या यह संभव नहीं कि वह किसी दिन केवल कैलिप्सो से मिलने ही आए? मगर क्या सीमा उसके दिल की बात समझ पाएगी? वह सीमा से किसी भी कीमत पर अपना रिश्ता नहीं तोड़ना चाहेगा। सीमा की ईर्ष्यालु तबीयत को अच्छी तरह समझता है। उसे यही लगेगा कि वह कैलिप्सो में रुचि लेने लगा है। पिछली बार जब एक नाटक देखने वाटरमेन्स थियेटर गये थे तो वहाँ एक महिला ने उसे गले से लगा लिया था। तीन दिन तक सीमा का मुँह फूला रहा। बस एक ही सवाल पूछती रही- “यह औरतें तुम्हें ही क्यों गले लगाती हैं?... कभी देखा है कि कोई पुरुष मुझे गले लगाने की

हिम्मत करे? तुम्हारे सर्कल में किसी और पुरुष को मैंने किसी महिला को गले लगाते नहीं देखा।... तुम पता नहीं किस तरह के मर्द हो?"

वह कभी सीमा को समझा नहीं पाया कि नाटक के क्षेत्र में कलाकार लोग एक-दूसरे को सहज रूप से गले लगा लेते हैं। मगर सीमा को समझाना आसान भी तो नहीं। फिर अपनी बात को सही साबित करने के लिये कह देगी- "देखो वह जो लेस्टर वाली रीना वर्मा हैं, अगर वह तुम्हें गले लगाए तो मुझे बुरा नहीं लगता। कॉवेन्टरी वाली स्नेहलता भी जब तुम्हें गले लगाती है, तो उसकी आँखों में वासना नहीं होती। मगर तुम जब अपनी कलाकारों को गले लगाते हो तो तुम्हारी आँखों में एक गन्दी-सी सोच साफ़ दिखाई दे जाती है।... और उस दिन जब वह रूसी लेडी बड़े गले की ड्रेस पहने मिली थी, तो कितनी बेहूदगी से झाँक-झाँक कर देख रहे थे तुम!"

नरेन ने बहुत बार सोचा भी है कि सीमा ऐसा व्यवहार क्यों करती है?... क्या इस तरह सीमा के साथ उसका रिश्ता लम्बी दूरी तक चल पाएगा? क्या उसे सीमा से इसी तरह डरते रहना होगा?... मगर वह स्वयं भी तो सीमा से प्यार करता है। उसकी बेटी भी उसे पसन्द करती है। जब कभी हेन्डन के लाहौर रेस्टॉरेण्ट में तीनों भोजन करने जाते हैं, तो प्राची नरेन के साथ बैठकर बतियाती है। कई बार तो नरेन के हाथों से ही खाना खाती है। फिर सीमा उसकी हर ज़रूरत का कितना ख़्याल रखती है! उसके रुमाल और जुराबों से लेकर कोलोन तक स्वयं लेकर आती है। क्या किसी पत्नी से कम निभाती है अपना कर्त्तव्य? और उसने तो साफ़-साफ़ बताया भी है कि उसका अपने पति से तलाक़ क्यों हुआ? उसके पति का हमेशा दूसरी औरतों में ध्यान लगा रहता था। उसने नरेन से साफ़-साफ़ कह दिया था कि वह दूसरी औरत कभी बरदाश्त नहीं करेगी।... फिर सीमा को बताए या नहीं?

नरेन ने बहुत बार सोचा भी है कि सीमा ऐसा व्यवहार क्यों करती है?... क्या इस तरह सीमा के साथ उसका रिश्ता लम्बी दूरी तक चल पाएगा? क्या उसे सीमा से इसी तरह डरते रहना होगा?...

नहीं! नहीं!! सीमा को कुछ नहीं बताएगा। जीवन में पहले क्या कम समस्याएं हैं जो और मुसीबत अपने सिर पर डाल ले? किन्तु समस्या स्वयं चली आती हैं। नरेन अपनी बस से उतरा तो उसने देखा कि कोई व्यक्ति कैलिप्सो से बातें कर रहा है। न जाने क्यों उसे जलन महसूस होने लगी है? पिछले कुछ दिनों से उसके दिल में कैलिप्सो पर एकाधिकार की सी भावना घर करती जा रही थी। थोड़ी देर में वह आदमी कैलिप्सो से कुछ कहता हुआ, उसके पास से हटकर सड़क पार कर सामने जाने लगा। नरेन का ध्यान कैलिप्सो से हटकर उस आदमी की तरफ़ ही लगा रहा। क़रीब चालीस-पैंतालीस वर्ष का रहा होगा। देखने में पूरा ब्रिटिश गोरा लग रहा था। भला यह कैलिप्सो का क्या लगता होगा? वह कैसे

मुस्कुरा-मुस्कुरा कर उस पुरुष से बात कर रही थी? भला उसके हिस्से की मुस्कुराहट किसी ग़ैर को कैसे नसीब हो गई? अचानक उसे लगा कि उसका एक रक़ीब पैदा हो गया है। नरेन ने तय कर लिया कि आज वह कैलिप्सो से बात कर ही लेगा। अब नहीं करेगा किसी की परवाह!

परवाह तो करनी ही पड़ेगी, क्योंकि नरेन के दिल पर पाँव रखता वह आदमी वापस आ गया है, और उसके हाथ में दो गिलास कॉफ़ी है। सामने वाले इटैलियन कैफ़े में से लाया है। भला वहाँ की कॉफ़ी कोस्टा से महँगी होगी या सस्ती? सुना है कि कोस्टा कॉफ़ी तो सबसे महँगी होती है; और सबसे टेस्टी भी। किसी दिन वह भी कैलिप्सो को कोस्टा कॉफ़ी ख़रीद कर देगा। सीमा के आने से आधा घण्टा पहले ही पहुँच जाएगा। पता लगाकर रहेगा कि आख़िर यह महिला यहाँ आकर क्यों बैठती है? किसी से डरती भी तो नहीं है।

डर तो पूरे लंदन में फैला हुआ है, आतंकवादियों का डर। वेस्ट हेण्डन में तो ख़ासतौर पर दहशत है। कहीं यह कैलिप्सो आतंकवादियों से मिली तो नहीं हुई? किसी दिन हेण्डन सेंट्रल स्टेशन पर बम न फट जाए। सात जुलाई का वह मनहूस दिन याद है उसे जब लन्दन अण्डर ग्राउण्ड में बमों के विस्फोट हुए थे। बसें, गाड़ियाँ सभी आतंकवादियों के निशाने पर थे; किन्तु इतना भला लगने वाला चेहरा क्या आतंकवादी हो सकता है?

हिम्मत करके सीमा से अनुमति माँग ही बैठा। दरअसल सीमा ने ख़ुद ही एक दिन कहा- "यह औरत हमेशा यहीं बैठी दिखायी देती है, कौन हो सकती है?" ..मैं भी बहुत दिनों से इसे देख रहा हूँ।

एक दिन हिम्मत कर ही बैठा। चल कर कैलिप्सो के पास पहुँच गया। गला सूखने लगा। ज़बान तालू से चिपकती जा रही थी। देखा कि वह नहायी-धोयी साफ़-सुथरी औरत है। सामने एक कोस्टा कॉफ़ी के गिलास में लोगों के दिये कुछ पैसे रखे हैं। उसने भी एक पाउण्ड का सिक्का उसमें डाल दिया और कहा- "आप कॉफ़ी पीना चाहेंगी?"

कैलिप्सो ने हाँ में सिर हिला दिया। कैलिप्सो की आवाज़ उस दिन भी नरेन की किस्मत में नहीं थी। सामने वाले कैफ़े की तरफ़ चल दिया। मन में कहीं डर भी था कि कहीं सीमा न आ जाए। सामने वाले कैफ़े से जाकर कॉफ़ी ख़रीदी। वहाँ कॉफ़ी कोस्टा के मुक़ाबले आधे दाम पर थी। एक गिलास एक पाउण्ड दस पैंस में। तसल्ली हुई कि एक पाउण्ड कैलिप्सो को दिया और एक पाउण्ड दस पैंस में कॉफ़ी ख़रीदी, फिर भी पन्द्रह पैंस की बचत हो गयी। उसकी इसी सोच को सीमा लोअर मिडिल क्लास थिंकिंग कहती है।

"थैंक यू।" कैलिप्सो की आवाज़ ने अपना संगीत बिखेरा था। जल्दी से बिना कुछ बोले ही नरेन बस स्टॉप पर आकर खड़ा हो गया। सीमा के आने का समय हो

चुका था। वह कभी भी आ सकती थी। मगर एक बात उसे पता चल गई थी कि कैलिप्सो पैसे भी लेती है और कॉफ़ी भी पीती है। कहीं यह धन्धा तो नहीं करती? मगर उसने तो कैलिप्सो को हमेशा वहीं बैठे देखा है, लेकिन वह तो वहाँ दस से पन्द्रह मिनट से अधिक कभी भी खड़ा नहीं हुआ। उसके जाने के बाद क्या करती है? कहाँ जाती है? यह किसे पता है? क्या बात करने के सेशन के भी पैसे माँगती होगी? प्रोफ़ेशनल लड़कियों के बारे में कुछ भी तो पता नहीं चलता। कब क्या माँग बैठें?

हिम्मत करके सीमा से अनुमति माँग ही बैठा। दरअसल सीमा ने ख़ुद ही एक दिन कहा- “यह औरत हमेशा यहीं बैठी दिखायी देती है, कौन हो सकती है?”

“मैं भी बहुत दिनों से इसे देख रहा हूँ। मैं चाहता हूँ कि इससे बात करके इसकी पूरी कहानी जान लूं, फिर उस पर एक नाटक लिखूं और उस नाटक की मुख्य भूमिका तुम करो।” सीमा के चेहरे पर एकाएक गंभीर चुप्पी छा गयी। नरेन को कुछ समझ नहीं आया कि वह अब करे तो क्या करे? उसे तीन सप्ताह के लिये भारत जाना था। सीमा की चुप्पी का सामना करने से भारत में तीन सप्ताह बिताना कहीं अधिक श्रेयस्कर था। तीन सप्ताह तक रोज़ सीमा का फ़ोन आता रहा। हर फ़ोन में हिदायत रहती कि किसी औरत को ज़्यादा अपने नज़दीक न आने दे। नरेन तीन सप्ताह सीमा की इस सीख को भारत में याद करता रहा– चाहे वह दिल्ली में रहा या फिर मुंबई में।

सीमा के लिये सूट, साड़ियाँ और परफ़्यूम लिये जब नरेन वापस लंदन पहुँचा- “नरेन, मैंने तुम्हारे पीछे बहुत सोचा तुम्हारी कैलिप्सो के बारे में। मुझे कोई आपत्ति नहीं है, तुम उससे बातचीत कर सकते हो।”

नरेन को समझ ही नहीं आ रहा था कि क्या कहे? बस चुप रह गया। उसे मालूम था कि अगर वह ख़ुशी दिखाएगा तो सीमा कहेगी- “मैं जानती थी कि तुम तड़प रहे होगे अपनी कैलिप्सो से गुटर-गूं करने के लिये। तुम मुझसे सैटिस्फ़ाइड क्यों नहीं हो? क्या कमी है मुझमें?” और अगर वह कहता कि उसे कैलिप्सो से मिलने में कोई रुचि नहीं तो वह खट से कह देती- “तो ठीक है। बाद में मुझे मत कहना कि मैनें तुमको उससे बात करने को रोका था। तुम तो किसी भी करवट बैठने लगते हो।”

अगले ही दिन नरेन हेण्डन स्टेशन के बस स्टॉप पर पहुँचा, ठीक तीन बजकर पैंतीस मिनट पर। बस से उतरकर सीधे कैलिप्सो की तरफ़ कदम बढ़ाए। मगर वह वहाँ नहीं बैठी थी।... आज छठा दिन है, और कैलिप्सो वापस नहीं आयी। आख़िर वह कौन थी? कहाँ से आई थी? और चली कहाँ गयी?

■

ओमप्रकाश यती

बलिया (उ. प्र.) में तीन दिसम्बर 1959 को जन्मे ओमप्रकाश यती के अब तक पाँच ग़ज़ल- संग्रह प्रकाशित।कुछ ग़ज़लें उत्तर महाराष्ट्र विश्वविद्यालय जलगाँव के स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम में शामिल।अनेक संस्थाओं द्वारा पुरस्कृत/ सम्मानित। भारत के बाहर सिंगापुर और अमेरिका के कई साहित्यिक कार्यक्रमों में भागीदारी।

ईमेल - yatiom@gmail.com

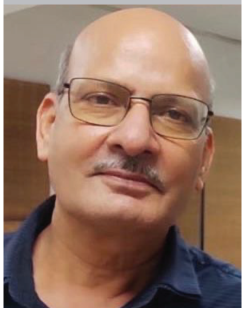

ग़ज़लें

-ओमप्रकाश यती

1.

कटा जो मुश्किलों से उस सफ़र की याद आती है
मुझे काँटों भरी टेढ़ी डगर की याद आती है

घरों में बैठकर बेकार अच्छा भी नहीं लगता
निकल जाओ अगर घर से तो घर की याद आती है

कटाकर हाथ, दुनिया को अचम्भा दे गए कैसा
इमारत देखकर उनके हुनर की याद आती है

कभी इंसान को दिल चैन से रहने नहीं देता
इधर की याद आती है, उधर की याद आती है

मैं अब भी आँधियों को कोसता हूँ खूब जी भर के
मुझे जब नीम के बूढ़े शज़र की याद आती है

ज़रा सी चीज़ भी कितना कठिन उनके लिए तब थी
पिता की ज़िन्दगी के उस समर की याद आती है

2.

मन में मेरे उत्सव जैसा हो जाता है
तुमसे मिलकर ख़ुद से मिलना हो जाता है

चिड़िया, तितली, फूल, सितारे, जुगनू सब हैं
लेकिन इनको देखे अर्सा हो जाता है

दिन छिपने तक तो रहता है आना-जाना
फिर गाँवों का रस्ता सूना हो जाता है

भीड़ बहुत ज़्यादा दिखती है यूँ देखो तो
लेकिन जब चल दो तो रस्ता हो जाता है

जब आते हैं घर में मेरे माँ-बाबूजी
मेरा मन फिर से इक बच्चा हो जाता है

3.

स्वार्थ की अंधी गुफ़ाओं तक रहे
लोग बस अपनी व्यथाओं तक रहे।

काम संकट में नहीं आया कोई
मित्र भी शुभकामनाओं तक रहे।

क्षुब्ध था मन देवताओं से मगर
स्वर हमारे प्रार्थनाओं तक रहे।

लोक को उन साधुओं से क्या मिला
जो हमेशा कन्दराओं तक रहे।

सामने ज्वालामुखी थे किन्तु हम
इन्द्रधनुषी कल्पनाओं तक रहे।

गौतम राजऋषि

सहरसा (बिहार) में जन्म। भारतीय सेना में कर्नल। दो ग़ज़ल संग्रह “पाल ले इक रोग नादां”, “नीला-नीला” तथा एक कहानी संग्रह “हरी मुस्कुराहटों वाला कोलाज” प्रकाशित।

ईमेल - gautamrajrishi@gmail.com

ग़ज़लें

-गौतम राजऋषि

1.

चलो, ज़िद है तुम्हारी फिर, तो लो मेरा पता लिक्खो
गली दीवाने की औ' नाम...वो...हाँ ! सरफिरा लिक्खो

उदासी के ही क़िस्सों को रक़म करने से क्या हासिल
अब आँखों बाज़ भी आओ न सब दिल का कहा लिक्खो

मैं आऊँगा! बदन पर आँधियाँ ओढ़े भी आऊँगा!
सुनो मंज़िल मेरी तुम तो हवा पर रास्ता लिक्खो

मुहब्बत बोर करती है, तो आओ गेम इक खेलें
इधर मैं अक्स लिखता हूँ, उधर तुम आईना लिक्खो

दहकता है, सुलगता है, ये सूरज रोज़ जलता है
अबे ओ आस्माँ ! इसको कभी तो चाँद सा लिक्खो

तुम्हारे शोर की ग़ज़लें तुम्हारी चीख़ती नज़्में
अरी ओ महफ़िलो! इक गीत अब तन्हाई का लिक्खो

ये मोबाइल के मैसेजों से मेरा जी नहीं भरता
मेरी जानाँ! कभी एकाध ख़त ख़ुशबू भरा लिक्खो

कड़कती धूप को प्यारे मैं तो साया बना लूंगा
फ़क़त तुम टूटती सी इन रगों पर हौसला लिक्खो

2.

बे-मौसम सा बे-मौसम दिल मौसम-मौसम बैठा है
धड़कन-धड़कन ज़ख़्म लगा कर मरहम-मरहम बैठा है

रूह-रूह में कोई उदासी...लेकिन जिस्म ये बेचारा
भीगी-भीगी ख़्वाहिश लेकर शबनम-शबनम बैठा है

दीवाने की आह उठी है...दीवाने की क़द्र करो
सप्तम का आलाप लिये है...सरगम-सरगम बैठा है

इश्क़ पे दुश्वारी-दुश्वारी...काँटें-काँटें चारों ओर
हुस्न तो नाज़ुक-नाज़ुक ठहरा...रेशम-रेशम बैठा है

कमरे से तस्वीर हटा कर रख तो दी, पर इसका क्या
यादों की अलमारी में वो अल्बम-अल्बम बैठा है

काली-काली रातें कितनी बीती हैं, तब अम्बर को
गोल-गोल सा चाँद हुआ है...पूनम-पूनम बैठा है

कूचा-कूचा रुसवाई थी...जोगी करता भी तो क्या
गंगा-जमुना पलकों पर ले संगम-संगम बैठा है

साँस-साँस की दूरी नहीं थी इतनी, फिर भी जाने क्यों
सीने से लगते-लगते वो बेदम-बेदम बैठा है

घर-घर कितनी यशोधरायें राह तके गुमसुम-गुमसुम
बरगद-बरगद लीन समाधी गौतम-गौतम बैठा है

3.

वो टुकड़ा रात का बिखरा हुआ सा
अभी तक दिन पे है ठहरा हुआ सा

उदासी एक लम्हे पर गिरी थी
सदी का बोझ है पसरा हुआ सा

उधर खिड़की में था मायूस चेहरा
इधर भी चाँद है कुतरा हुआ सा

छुअन थी नींद की कुछ सर्द इतनी
बदन है ख़्वाब का सिहरा हुआ सा

ये किन नज़रों से मुझको देखते हो
रहूँ हरदम सजा-सँवरा हुआ सा

लिखा उस नाम का पहला ही अक्षर
मुकम्मल पेज़ है चेहरा हुआ सा

न छेड़ो फिर से इसको मुस्कुरा कर
वही क़िस्सा मेरा बिसरा हुआ सा

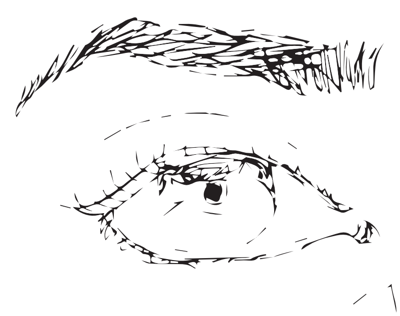

अन्नदा पाटनी

अमेरिका में बसी हिन्दी रचनाकार। फ्रेंच नॉवलिस्ट आंद्रे जीद के उपन्यास का अंग्रेज़ी से हिंदी अनुवाद, 'प्रेम और प्रकाश' नाम से पुस्तक के रूप में प्रकाशित। 'अंतर्दृष्टि' तथा 'पूर्णाहुति' पुस्तकों का प्रकाशन। उपन्यास 'तेरे लिए' प्रकाशित।

ईमेल - annada.patni@gmail.com

रोटी का गणित

-अन्नदा पाटनी

अगले लॉकडाउन पर थोड़ी कंजूसी करनी पड़ी। तीनों टाइम सबको एक एक रोटी और आधी कटोरी दाल। बच्चे और माँगते तो डाँट लगा देती, " बस और नहीं मिलेगी।" बच्चे बेचारे सहम जाते।

मंदा ने रोटी गिनी तो सात थीं। घर में खाने वाले पाँच बच्चे, वह खुद और पति,कुल सात जने। तीन टाइम चलाना था पर ये तो एक बार में ही ख़त्म हो जायेंगी, यह सोच एक एक रोटी के तीन तीन टुकड़े कर दिए। एक टुकड़ा सुबह,एक दोपहर और एक शाम के लिए।

आज का काम तो चल जाएगा पर बेचारी सोचती रही कि कल क्या होगा।एक उपाय है। आज वह और उसका पति अपने बाँट का हिस्सा नहीं खाएँगे तो कल बच्चों के लिए दो रोटी बच जाएँगी।उनके फिर टुकड़े कर बच्चों में बाँट कर खिला देंगे। पर पेट तो तब भी नहीं भरेगा।वह परेशान थी कि करे तो क्या करे।

पहले लॉकडाउन में तो उसकी तनख़्वाह व मालकिन के कुछ एक्स्ट्रा पैसे देने के कारण घर में आटा, दाल नमक चीनी आदि थोड़ा बहुत तो जमा कर लिया था। तब सबको पेट भर खाना खिला पा रही थी। पति दिहाड़ी मज़दूर था। एक पैसे की मदद नहीं कर पाया।

अगले लॉकडाउन पर थोड़ी कंजूसी करनी पड़ी। तीनों टाइम सबको एक एक रोटी और आधी कटोरी दाल। बच्चे और माँगते तो डाँट लगा देती, " बस और नहीं मिलेगी।" बच्चे बेचारे सहम जाते। मंदा मन ही मन बहुत दुखी होती पर सबर कर लेती कि जल्दी कॉरोना से मुक्ति मिल जाएगी ,लॉकडाउन खुल जाएगा और सब कुछ पहले जैसा चलने लगेगा।

दिल पर पत्थर रख कर आज जब उसने बच्चों के आगे रोटी का एक टुकड़ा और एक गिलास पानी रखा तो बच्चे रोने लगे। बेचारी मंदा अब क्या करे। अपनी बेबसी और लाचारी पर उसे ग़ुस्सा आ रहा था।

जैसे जैसे सोम, मंगल, बुद्ध बीत रहे थे वैसे वैसे आटा, दाल व अन्य खाने का सामान भी बीता जा रहा था ।

दिल पर पत्थर रख कर आज जब उसने बच्चों के आगे रोटी का एक टुकड़ा और एक गिलास पानी रखा तो बच्चे रोने लगे । बेचारी मंदा अब क्या करे । अपनी बेबसी और लाचारी पर उसे ग़ुस्सा आ रहा था । उसने खिसिया कर एक एक चांटा बच्चों के गाल पर रसीद कर दिया और चिल्लाने लगी,” खाना है तो खाओ नहीं तो भाड़ में जाओ ।” और खुद भी रोने लगी । पति बेचारा असहाय देखता रहा पर कुछ कहने लायक उसकी हैसियत ही नहीं थी । घर का दरवाजा खुला था । तभी एक भिखारी आ खड़ा हुआ, हाथ फैलाए । मंदा गरज उठी,’देख नहीं रहे बच्चे कैसे भूख से बिलबिला रहे हैं । घर में न एक धेला है न अन्न का एक दाना। हमारे ही खाने के लाले पड़ रहे हैं,ऊपर से चले आ रहे हो माँगने । बच्चों पर दया करना तो दूर, खड़े हो तमाशा और देख रहे हो । जाओ बाबा,जाओ यहाँ से ।“

बेचारा फटेहाल भिखारी मंदा का ग़ुस्सा देख सकपका गया । हाथ से जाने का इशारा कर मुड़ा और चल दिया । बाहर निकलते निकलते दरवाज़े के बाहर झुका। मंदा को शक हुआ, ज़रूर कुछ उठा कर ले जा रहा दिखता है । जल्दी से बाहर निकल कर आई कि तुरंत पकड़ ले उसे । जैसे ही दरवाज़े के पास आ कर देखा तो देखती क्या है एक बड़ा सा खाने का पैकेट , जिसके ऊपर लिखा हुआ था समाज सेवी संस्था द्वारा वितरित खाना और पकाने की अतिरिक्त सामग्री ।मंदा आँखों में आँसू भरे उस भिखारी को जाते हुए देखती रही ।

■

सुकेश साहनी

लखनऊ (उत्तर प्रदेश) में जन्म। निदेशक (भूगर्भ जल विभाग, उ.प्र.) पद से सेवानिवृत्त। लघुकथा, बाल-कथा, कहानी, आलेख सहित ग्यारह से अधिक संग्रह प्रकाशित। लघुकथा पर विशेष कार्य तथा अनेक पुस्तकों का संपादन।

ईमेल - sahnisukesh@gmail.com

दूसरा चेहरा

-सुकेश साहनी

मिक्की की आँखों में नींद नहीं थी। वह पिल्ले को अपने पास नहीं रख पाएगा, यह सोच कर उसका मन बहुत उदास था। पिल्ले को लेकर ढेरों सपने बुने थे ; पर घर आते ही सब कुछ खत्म हो गया था। माँ ने पिल्ले को देखते ही चिल्लाकर कहा था, ”अरे, यह क्या उठा लाया तू? तेरे पिता जी ने देख लिया तो किसी की भी खैर नहीं। उन्हें नफरत है इनसे। जा, इसे वापस छोड़ आ।“

दादी माँ ने बुरा सा मुँह बनाया था, ”राम–राम! कुत्ता सोई जो कुत्ता पाले। बाहर फेंक इसे- “यह सब सुनकर उसे रोना आ गया था। कितनी खुशामद करने पर दोस्त पिल्ला देने को राजी हुआ था। चूँकि दोस्त का घर दूर था ; इसलिए एक रात के लिए उसे पिल्ले को घर में रखने की इजाजत मिली थी।

पिता जी के आने से पहले ही उसने बरामदे के कोने में टाट बिछाकर उसे सुला दिया था।

कूँ...कूँ की आवाज से वह चौंक पड़ा। बरामदे में स्ट्रीट लाइट की वजह से हल्की रोशनी थी। पिल्ले को ठंड लग रही थी और वह बरामदे में सो रही दादी की चारपाई पर चढ़ने का प्रयास कर रहा था। वह घबरा गया...सोना तो दूर दादी अपना बिस्तर किसी को छूने भी नहीं देतीं...उनकी नींद खुल गई तो वे बहुत शोर करेंगी...पिता जी जाग गए तो पिल्ले को तिमंजिले से उठाकर नीचे फेंक देंगे...वह रजाई में पसीने–पसीने हो गया। माँ ने सोते हुए, एक हाथ उस पर रखा हुआ था, वह चाहकर भी उठ नहीं सकता था। पिल्ले की कूँ–कूँ और पंजों से चारपाई को खरोंचने की आवाज रात के सन्नाटे में बहुत तेज मालूम दे रही थी।

दादी की नींद उचट गई थी, वह करवटें बदल रही थीं। आखिर वह उठ कर बैठ गई।

आने वाली भयावह स्थिति की कल्पना से ही उसके रोंगटे खड़े हो गए। उसे लगा दादी पिल्ले को घूरे जा रही हैं।

दादी ने दाएँ–बाएँ देखा...पिल्ले को उठाया और पायताने लिटाकर रजाई ओढ़ा दी।

■

डॉ. विनोद तिवारी

जन्म हरदोई, उत्तर प्रदेश में। वर्तमान में निवास कोलोराडो, अमरीका में। भौतिक विज्ञान पर अडिग आस्था, हिन्दी से अटूट अपनत्व, और हिंदी काव्य में असीम रुचि। राष्ट्रीय वैज्ञानिक संस्थान में वैज्ञानिक के रूप में कार्यरत। एक काव्य-संग्रह 'समर्पित सत्य, समर्पित स्वप्न' प्रकाशित। लगभग बीस वर्षों से, वह वाणी मुरारका के सहयोग में काव्यालय (www.kaavyaalaya.org) का सम्पादन कर रहे हैं।

ईमेल - tewary@hotmail.com

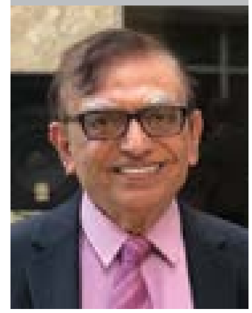

प्रवासी गीत

यहाँ सुनें »

-डॉ. विनोद तिवारी

चलो, घर चलें!
लौट चलें अब उस धरती पर;
जहाँ अभी तक बाट तक रही
ज्योतिहीन गीले नयनों से
(जिनमें हैं भविष्य के सपने
कल के ही बीते सपनों से),
आँचल में मातृत्व समेटे,
माँ की क्षीण, टूटती काया।
वृद्ध पिता भी थके पराजित
किन्तु प्रवासी पुत्र न आया।
साँसें भी बोझिल लगती हैं
उस बूढ़ी दुर्बल छाती पर।
चलो, घर चलें!
लौट चलें अब उस धरती पर।

चलो, घर चलें!
लौट चलें अब उस धरती पर;
जहाँ बहन की कातर आँखें
ताक रही हैं नीला अम्बर
आँसू से मिट गई उसी की
सजी हुई अल्पना द्वार पर।
सूना रहा दूज का आसन,
चाँद सरीखा भाई न आया।
अपनी सीमाओं में बंदी,
एक प्रवासी लौट न पाया।
सूख गया रोचना हाथ में,
बिखर गये चावल के दाने
छोटी बहन उदास, रुआसी,
भैया आये नहीं मनाने।
अब तो कितनी धूल जम गयी
राखी की रेशम डोरी पर।
चलो, घर चलें!
लौट चलें अब उस धरती पर।

चलो, घर चलें!
लौट चलें अब उस धरती पर।
कितना विषम, विवश है जीवन!
रोज़गार के कितने बन्धन!
केवल एक पत्र आया है,
छोटा-सा संदेश आया है,
बहुत व्यस्त हैं, आ न सकेंगे
शायद अगले साल मिलेंगे।
एक वर्ष की और प्रतीक्षा,
ममता की यह विकट परीक्षा।
धीरे-धीरे दिये बुझ रहे
हैं आशाओं की देहरी पर।
चलो, घर चलें!
लौट चलें अब उस धरती पर।
चलो, घर चलें!
लौट चलें अब उस धरती पर।
अगला साल कहाँ आता है
आखिर सब कुछ खो जाता है
अन्तराल की गहराई में।
जीवन तो चलता रहता है
भीड़ भाड़ की तनहाई में।
नयी- नयी महफ़िलें लगेंगी,
नये दोस्त अहबाब मिलेंगे।
इस मिथ्या माया नगरी में
नये साज़ो-सामान सजेंगे।
लेकिन फिर वह बात न होगी,
जो अपने हैं, वह न रहेंगे।
घर का वह माहौल न होगा,
ये बीते क्षण मिल न सकेंगे।
वर्तमान तो जल जाता है
काल देवता की काठी पर।
चलो, घर चलें!

लौट चलें अब उस धरती पर।

चलो, घर चलें!
लौट चलें अब उस धरती पर।
जहाँ अभी भी प्यार मिलेगा,
रूठे तो मनुहार मिलेगा,
अपने सर की कसम मिलेगी,
नाज़ुक-सा इसरार मिलेगा।
होली और दिवाली होगी,
राखी का त्योहार मिलेगा।
सावन की बौछार मिलेगी,
मधुरिम मेघ-मल्हार मिलेगा।
धुनक-धुनक ढोलक की धुन पर
कजरी का उपहार मिलेगा।
एक सरल संसार मिलेगा,
एक ठोस आधार मिलेगा
एक अटल विश्वास जगेगा,
अपनी प्रामाणिक हस्ती पर।
चलो, घर चलें!
लौट चलें अब उस धरती पर।

चलो, घर चलें!
लौट चलें अब उस धरती पर।
पूरी होती नहीं प्रतीक्षा,
कभी प्रवासी लौट न पाये।
कितना रोती रहीं यशोदा,
गये द्वारका श्याम न आये।
दशरथ गए सिधार चिता, पर
राम गए वनवास, न आये।
कितने रक्षाबन्धन बीते,
भैया गये विदेश, न आये।
अम्बर एक, एक है पृथ्वी,
फिर भी देश-देश दूरी पर।
चलो, घर चलें!
लौट चलें अब उस धरती पर।

चलो, घर चलें!
लौट चलें अब उस धरती पर।
जहाँ प्रतीक्षा करते-करते
सूख गयी आँसू की सरिता।
उद्वेलित, उत्पीड़ित मन के
आहत सपनों की आकुलता।
तकते-तकते बाट, चिता पर।
राख हो गई माँ की ममता।
दूर गगन के पार गई वह
आँखों में ले सिर्फ विवशता।
एक फूल ही अर्पित कर दें
उस सूखी, जर्जर अरथी पर।
चलो, घर चलें!
लौट चलें अब उस धरती पर।

चलो, घर चलें!
लौट चलें अब उस धरती पर।
जहाँ अभी वह राख मिलेगी,
जिसमें निहित एक स्नेहिल छवि,
स्मृतियों के कोमल स्वर में
मधुर-मधुर लोरी गायेगी।
और उसी आँचल में छिप कर,
किसी प्रवासी मन की पीड़ा,
युगों-युगों की यह व्याकुलता,
पिघल-पिघल कर बह जायेगी।
एक अलौकिक शान्ति मिलेगी।
आँख मूँद कर सो जायेंगे,
सर रख कर माँ की मिट्टी पर।
चलो, घर चलें!
लौट चलें अब उस धरती पर।

डॉ. विश्व दीपक बमोला 'दीपक'

अगस्त्यमुनि, रुद्र प्रयाग (उत्तराखंड) में जन्म । अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान (एम्स), नई दिल्ली, भारत में स्वास्थ्य वैज्ञानिक के रूप में कार्यरत। हाइकु संग्रह 'क्षितिज के आयाम' प्रकाशित। हाइकु के महत्वपूर्ण सन्दर्भ ग्रन्थ 'हिंदी हाइकु कोश' में डॉ. बमोला की हाइकु कविताएँ शामिल हैं।

ईमेल - vdeepakbamola@gmail.com

हाइकु

-डॉ. विश्व दीपक बमोला 'दीपक'

हौसला देता
हवाओं से लड़ता
आले का दीया
*

चुभते रहे
रिश्तों की बगिया में
अहं के काँटे
*

बाँज के पेड़
जड़ों में भर लेते
शीतल जल
*

ढूँढता रहा
चेहरे की धूल मैं
मैले शीशे में
*

सह रही हैं
मनुजता के दंश
गंगा-यमुना !
*

सामने लाती
भ्रष्टाचार के गड्ढे
हर बारिश!
*

सिमट गया
रिश्तों का मेलजोल
मोबाइल में
*

अहं का युद्ध
छीन गया जिंदगी
बेगुनाहों की
*

कौन भेजता ?
अँधेरों से लड़ने
सूरज तुझे!
*

क्रोध जताते
फेंक कर शिलाएँ
क्षुब्ध पर्वत

■

ज्ञान चतुर्वेदी

मऊरानीपुर, झाँसी (उत्तर प्रदेश) में जन्म। 'भेल' भोपाल से चीफ़ ऑफ मेडिकल सर्विसेज के पद से सेवानिवृत। वर्तमान में भोपाल के मल्टीस्पेशलिटी हॉस्पिटल में मेडिसन विभाग के प्रमुख। 6 उपन्यास और 12 व्यंग्य-संग्रह प्रकाशित।

ईमेल - gyanchaturvedibpl@gmail.com

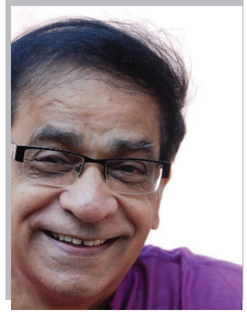

उनका रूठना

-ज्ञान चतुर्वेदी

संयोग श्रृंगार-रस से सिक्त काव्य के गहन अध्ययन और अपने अकिंचन प्रयासों से हमने नायिकाओं के बारे में जो थोड़ा बहुत जाना समझा है वह यही है कि वे अक्सर रूठ जाती हैं। पिया लोगों का बहुत सा वह महत्त्वपूर्णटाइम उनको मनाने में खर्च हो जाता है...

रूठे हुये सनम को कैसे मनाया जाये?
इस प्रश्न का सटीक उत्तर किसी के पास नहीं। कोई सर्वसम्मत नियम कायदा भी नहीं। रूठे बच्चे को अलग तरह से मनाना पड़ता है, रूठे पिया को एकदम अलग ढंग से हालांकि पिया भी कभी बच्चों टाइप ही रूठ जाया करते हैं। ..और नायिका का रूठना? उसके रूठने का तो कहना ही क्या! पहले तो यह तय करो कि इस रूठने में कितना तो रूठना है और कितना ठनगन? फिर यह आकलन भी कि समय रहते इसे न मना पाया तो दुष्परिणाम क्या होंगें?
वैसे भी असली रूठना तो नायिका का होता है। संयोग श्रृंगार-रस से सिक्त काव्य के गहन अध्ययन और अपने अकिंचन प्रयासों से हमने नायिकाओं के बारे में जो थोड़ा बहुत जाना समझा है वह यही है कि वे अक्सर रूठ जाती हैं। पिया लोगों का बहुत सा वह महत्त्वपूर्णटाइम उनको मनाने में खर्च हो जाता है जिसे वे मौके पर आवश्यक श्रृंगारिक गतिविधियों में लगा सकते थे। नायिका अक्सर स्वयं नहीं जानती कि वह रूठी क्यों है? वह तो बस यूँ ही बीच-बीच में रूठ जाती है, जैसे बीच-बीच में गली की बिजली चली जाती है, या पेट फूलने लगता है, गैस फँस जाती है, पीठ पर कहीं खुजली होने लगती है या जंगल में कहीं ट्रेन रुक जाती है; इन सबका भी कारण हमें कहाँ पता चल पाता है; बस, वैसा ही कुछ इसे भी मान लें। ... इधर पिया बड़ी आशा और इरादों के साथ घर आये हैं, उधर नायिका रूठी पड़ी है। पिया ने पूछा तो कुछ बताती

नहीं। ...क्यों रूठी हो? ... नहीं तो ! हम क्यों किसी से रूठते फिरेंगे? ...फिर भी? कुछ तो हुआ है? अरे, क्या हो गया? ...कुछ भी तो नहीं। और मान लो कि हम रूठे भी हों तो क्या फर्क पड़ता है तुम्हें? तुम तो बस अपने काम में मग्न रहो। ...बताइये! रूठी हुई है पर मानने को राजी नहीं कि रूठी है। ....नहीं तो! हम नहीं रूठे हैं। ...अरे, पहले वह माने तो, तब न पिया उसे मनायें? वह कुछ भी बता नहीं रही। बस, ठनगन चल रहे हैं। रूठी बैठी है। बस, हाँ हूँ में ज़वाब दे रही है।

पिया फाल्तू में फ्रस्टा रहे हैं।

अब पिया क्या करें ? पिया कर भी क्या सकते हैं?

ऐसे में कुछ पिया तो थोड़ी देर ट्राई करके छोड़ देते हैं कि अब तुम जाओ भाड़ में, बताती हो तो बताओ वरना ...! कुछ पिया लोग खुद रूठ जाते हैं कि तुम मेरा अच्छा खासा मूड खराब कर देती हो; छोटी-छोटी बातों पर मुँह फुलाकर इस तरह से बैठ जाने का क्या मतलब होता है? ...अब दोनों ही रूठकर बैठे हुए हैं। बोलचाल बंद। मुँह फूले हुए। दोनों ही रूठे। अब कौन किसे मनाये? ... रूठे रहो। यह भी कोई बात है कि हर बार हम ही मनाते फिरें तुमको! और यार, कोई कब तक मनाये? स्साला, यह तो रोज का झंझट। ऐसे चलता है क्या? ... हाँ भाई साहब, ऐसे ही चलता है। कहते हो कि उससे प्यार किया है और उसके रूठने से घबराते हो? वह तो रूठेगी ही। नायिका न रूठेगी तो श्रृंगार-रस का तुम्हारा घड़ा आधा खाली हो जायेगा यार। बात को समझा करो। ...पिया समझ भी रहे हैं। ...क्या करें यार, इस बार तो हमें भी गुस्सा ही आ गया! अब हम रूठ गये हैं तो देखो, वह भी थोड़ा-सा साफ्ट हो रही है न? चलो, अब हम ही उसे मना लेते हैं। ... मनाना तो अंत में पिया को ही पड़ेगा। मान भी गई है नायिका। अब प्यार भरा उलाहना दे रही है कि तुमको तो ठीक से मनाना भी नहीं आता जी!

...हाँ, यदि वह अब भी वह न मानी तो कुछ पिया लोग फिर सीधे नायिका की ठुकाई कर देते हैं कि हम स्साले तब से तेरी लल्लो-चप्पो कर रहे हैं और तू बताने को ही राजी नहीं कि इस तरह से मुँह सुजाकर आखिर क्यों बैठी है? मुझे बेवकूफ समझ लिया है क्या कि उधर दफ्तर में दिन भर ऐसी-तैसी करा के सुकून के लिये घर लौटो और यहाँ तू ऐसी बैठी मिले? हद है यार। चलो, कभी-कभी औरत रूठे तो आदमी उसे मना ले, पर यहाँ तो यह रोज का किस्सा कर दिया तूने? ..हाँ, ऐसे फौजदारी पिया भी होते हैं। नायिका इनसे भी प्रेम करती हैं। ऊपर से तो यही दिखता है। पिया को

पिया लोग फिर सीधे नायिका की ठुकाई कर देते हैं कि हम स्साले तब से तेरी लल्लो-चप्पो कर रहे हैं और तू बताने को ही राजी नहीं कि इस तरह से मुँह सुजाकर आखिर क्यों बैठी है? मुझे बेवकूफ समझ लिया है क्या कि उधर दफ्तर में दिन भर ऐसी-तैसी करा के सुकून के लिये घर लौटो...

विश्वास है कि उस दिन जरा सा एक थप्पड़ मार देने का मतलब यह थोड़ेई हुआ कि हम उसे कोई कम प्यार करते हैं! ...वह रूठे तो हम मनाते ही हैं कि नहीं? तब उसकी लल्लो-चप्पो भी खूब करते हैं। पर यह रोज-रोज का रूठना भी, यार, यू...नो !...जो हो। अंततः नायिका को मानना ही है, उसे आगे भी तो रूठना है! प्रेमकथा एक रूठने से दूसरे रूठने के बीच की कथा है, बस। प्रेमकथा जारी रहे, इसके लिये नायिका का अभी मान जाना जरूरी है ताकि वह फिर से रूठ सके। ...परंतु क्या कोई ऐसे ही, जब चाहे रूठ सकता है? हाँ, उदाहरण तेरे सामने है, वह रूठती है न! वह सोच भर ले और रूठ जाती है। कई बार तो वह बिना सोचे भी रूठ जाती है। किसी कारण की दरकार भी नहीं। उसका नायिका होना ही पर्याप्त कारण है। नायिका है तो रूठेगी ही। नायिका होने में एक इन-बिल्ट मैकेनिज्म साथ आता है। रूठना इस मशीन का ज़रूरी फंक्शन है। फैक्ट्री सेटिंग सी मान लें। रूठने का सिस्टम वहीं से फिट होकर आता है। यह सिस्टम सोती हुई नायिका में भी जाग्रत रहता है। कहीं जरा-सा खटका दबा कि यह सक्रिय हो जाता है। अब आप सोचते रहें कि इसके अच्छे खासे मूड को यह अचानक क्या हो गया? प्राय: पिया इस जटिल मशीन की वर्किंग से नावाकिफ होते हैं। वे रोज ही कोई न कोई ग़लत खटका दबा बैठते हैं; फिर भागते फिरते हैं कि हाय, यह क्या हुआ? बाद में उसके रूठने को वे लोग मशीन की नार्मल खड़खड़ मानने लगते हैं, घबराते नहीं। जान जाते हैं कि रूठना नायिका की सहज वृत्ति है; उसकी आदत है, पहचान है, अदा, हथियार और गणित भी है। वह जानती और मानती है कि इस बहाने यदि इस लापरवाह पिया के बच्चे को ठीक से दबाकर न रखा गया तो यह तो मुझ पर कभी ध्यान ही न देगा। अपने में ही मग्न रहता है पिया। भूल जाता है कि कभी इसी नायिका के पीछे वह कैसा श्वानवत लगा रहता था। इसीलिये, बीच-बीच में रूठकर नायिका उसे अपने होने की खबर देती रहती है। उसका रूठना पिया की संसद में प्रस्तुत एक ध्यानाकर्षक प्रस्ताव है जिसे पिया को ध्वनिमत से पारित कराना होता है।

जनाब, वह केवल गीतों में होता है वर्ना पिया या सैंयाजी का क्या तो रुठना! फिल्मी गानों से एक अफवाहनुमा माहौल जरूर बना है कि पिया भी रुठा करते हैं और नायिका भी उसको मनाती है। ...'रुठे रुठे पिया मनाऊँ कैसे' टाइप के गाने सुनकर कोई मीठा भ्रम न पाल बैठें।

और पिया का रूठना?

जनाब, वह केवल गीतों में होता है वर्ना पिया या सैंयाजी का क्या तो रुठना! फिल्मी गानों से एक अफवाहनुमा माहौल जरूर बना है कि पिया भी रूठा करते हैं और नायिका भी उसको मनाती है। ...'रूठे रूठे पिया मनाऊँ कैसे' टाइप के गाने सुनकर कोई मीठा भ्रम न पाल बैठें। वास्तविकता

यह है कि रूठने का हक ही नहीं है पियाजी को। ...पर कभी, वह हुआ रूठते तो हैं। हमने खुद देखा है। हम तो एकाध बार खुद भी रूठे हैं यार। तो ? वह क्या है ?.. यार, पिया का क्या तो रूठना, क्या मान जाना। वैसे भी कोई उसे मनाने से तो रहा -कभी रूठे भी तो खुद ही मान जाते हैं। न केवल मान जाते हैं, बाद में नायिका से माफियाँ माँगते फिरते हैं कि यार, मैं फालतू ही नाराज हो गया था! नायिका वाकिफ है पिया की रग-रग से। जानती है कि रूठा है पर इसे लंबा रूठना आता ही नहीं। इसमें वह मारक धैर्य ही नहीं। प्रभावी ढंग से रूठने के लिये बड़े धैर्य की आवश्यकता होती है। हाँ,यह रूठा हुआ बैठा है पर अभी देखना तुम, कुछ देर तक रूठकर खुद ही बोर हो जायेगा और हें हें करने लगेगा। पिया लंबा नहीं रूठ पाते। रूठना भी एक तरह की कुंडलिनी साधना है। पिया नहीं साध पाते यह सब। कभी स्वाद बदलने के लिये बस यूँ ही रूठ लेते हैं। थोड़ी देर रूठ लिये। थोड़ा मुँह फुलाकर बैठ लिये, फिर? फिर मन करता है कि यार, जाने दो। क्यों कर रहे हो यह सब? काहे को, खामोंखाँ...। फिर पियाजी प्रतीक्षा करने लगते हैं कि मनाने का थोड़ा सा इशारा भी कोई कर दे तो तो वे अपना अनशन तोड़ दें! वह क्षंण भी आता है। नायिका चाय बनाकर सामने रख देती है और पिया खुशी खुशी चाय सुड़कने लगते हैं। मुस्कुराकर कह देते हैं कि चाय बहुत अच्छी बनी है। बात खत्म। एकदम भूल ही गये कि अभी-अभी रूठे हए बैठे थे। पिया लोग का यही है। वे न केवल लंबा रूठ नहीं पाते, जल्दी ही मान भी जाते हैं। नायिका भी जानती है कि रूठे हुये हैं, पर अभी ठीक हो जायेंगे। पिया इसे खींच नहीं पाते। पिया का रूठना बस यूँ ही है।

तो ऐसा है भाई साहब रूठने का तो। लंबा विमर्श माँगता है यह विषय। अभी तो हमें बच्चों के रूठने, पिताजी, जीजाजी और फूफाजी के रूठने और बास के रूठ जाने की चर्चा भी करनी थी परंतु क्या करें कि सारी स्पेस नायिका के रूठने ने ही ले ली। नायिका का रूठना हमेशा सारी स्पेस पर छा जाता है। इस बारे में आप कुछ नहीं कर सकते। हम सब किसी के पिया हैं और यह हकीकत जानते हैं।

■

प्रगति टिपणीस

जन्म लखनऊ में, पिछले तीन दशकों से मास्को, रूस में रह रही हैं। रूसी भाषा से हिंदी और अंग्रेज़ी में अनुवाद करती हैं। आजकल एक पाँच सदस्यीय दल के साथ हिंदी-रूसी मुहावरा कोश और हिंदी मुहावरा कोश पर काम कर रही हैं। मॉस्को की सबसे पुरानी भारतीय संस्था 'हिंदुस्तानी समाज, रूस' की सांस्कृतिक सचिव हैं।

ईमेल - pragatinovmos@gmail.com

हर कोई यहाँ सफर पर है

-प्रगति टिपणीस

अफ़ानासी निकितिन एक व्यापारी थे और उनका मक़सद अपने कारोबार को बढ़ाना तथा व्यापार की नयी संभावनाओं तथा सुदूर और सम्मोहक भारत को जानना था। रूस का अधिकांश हिस्सा ज़मीनी है और समुद्र की तरफ़ इसका निकास बहुत कम जगहों पर ही है।

बहती लहरों के साथ-साथ चलते रास्ते और उन पर दौड़ते लोगों को देखकर फिर यह सवाल ज़हन में उठा कि क्या हम कभी मुक़ीम होते भी हैं। हालाँकि वोल्गा नदी की सैर पर हम तो भव्य जहाज़ 'कंस्तांतिन करतकोव' में बैठे हुए थे, पर इर्द-गिर्द सब चलायमान था। फूल भी हवा में बहके हुए थे, पेड़ जैसे ख़ुमारी में झूम रहे थे, नीला आसमान साथ चल रहा था, रूप और आकार बदलते बादल उसमें अठखेलियाँ खेल रहे थे। मंज़र यह अक्सर सामने आता है और जब भी आता है, मन को बहुत भाता है। नदी की इस यात्रा का एक ही पड़ाव था- शहर त्वेर। कुछ समय के लिए इसे 'कालिनिन' के नाम से भी जाना गया।

हम भारतवासियों को, जिन्हें वाराणसी जैसे विश्व के प्राचीनतम शहरों का गौरव ज्ञात है, किसी शहर का आठ-नौ सौ साल पुराना होना किसी आश्चर्य में नहीं डालता। त्वेर का इतिहास भी इतना ही पुराना है। इस शहर की सैर शुरू हुई अफ़ानासी निकितिन के मुजस्सिमे के पास से। हम में से कम ही इस नाम से वाक़िफ़ होते हैं। वास्को डिगामा के भारत पहुँचने से लगभग 30 साल पहले अफ़ानासी निकितिन के पाँव वहाँ पड़ चुके थे।

इतिहास के हर दौर की कुछ विशेषताएँ रही हैं। पंद्रहवीं सदी लम्बी समुद्री यात्राओं के लिए जानी जाती है। कोलंबस भारत के लिए निकलकर नयी दुनिया पहुँच गए। उनके अधूरे छूटे काम को वास्को डिगामा ने पूरा किया और कहते हैं कि यूरोप वासियों के लिए उन्होंने ही एशिया का समुद्री मार्ग खोला। जबकि अफ़ानासी तीन समुद्रों (काला सागर, कैस्पियन सागर, अरब सागर) को पार कर के वास्को डिगामा से 30 साल पहले ही यूरोप से भारत तक की राह प्रशस्त कर चुके थे। स्पेन, पुर्तगाल, हॉलैंड वग़ैरह देशों से चूँकि बड़ी संख्या में नाविक साहसिक समुद्री यात्राओं पर निकल रहे थे, उन्हीं

की कहानियों और क़िस्सों में इस अकेले रूसी नाविक की कथा दब कर रह गयी।

अफ़ानासी निकितिन एक व्यापारी थे और उनका मक़सद अपने कारोबार को बढ़ाना तथा व्यापार की नयी संभावनाओं तथा सुदूर और सम्मोहक भारत को जानना था। रूस का अधिकांश हिस्सा ज़मीनी है और समुद्र की तरफ़ इसका निकास बहुत कम जगहों पर ही है।

आज के तकनीकी युग में कृत्रिम नहरें जलराशियों को जोड़ने का अद्भुत काम कर रही हैं। रूस जैसा देश- जिसके मात्र एक छोटे भूभाग को काला सागर की लहरें धोती हैं- कृत्रिम नहरों के चलते पाँच सागरों से जुड़ा देश बन चुका है। विभिन्न नदियों और सागरों के बीच नहरें बनाकर इसे श्वेत सागर, आज़ोव सागर, कैस्पियन सागर, बाल्टिक सागर से जोड़ा जा चुका है; काले सागर के तट पर तो इसका एक भूभाग बसा ही है; 2014 के शीत ओलिंपिक खेलों का रमणीय शहर सोची काला सागर पर ही स्थित है।

मस्क्वा और वोल्गा नदियों को भी मस्क्वा नहर जोड़ती है। भौगोलिक दृष्टि से रूस दुनिया का सबसे बड़ा देश है, और जनसंख्या इसकी लगभग 14.4 करोड़ है। यानी धरती और प्रकृति अभी भी अधिकतर जगहों पर यहाँ अनछुई रह सकी है, अपने मूल नैसर्गिक रूप में है। मस्क्वा नहर मात्र कुछ स्थानों पर ही नहर लगती है, वरना यह दुनिया की अधिकतर नदियों से चौड़ी ही है। दोनों नदियों की सतहों के लगभग 35 मीटर के अंतर को पाटने के लिए इसमें छह जल-फाटक हैं, हर फाटक में लगभग 4-8 मीटर के अंतर को समाप्त किया जाता है।

चलिए, लौटें निकितिन की यात्रा की ओर। उस समय न ही पानी के मार्ग इतने सुगम थे और न ही नौ-सञ्चालन सुविधाएँ इतनी विकसित, ये यात्राएँ अदम्य साहस की द्योतक होती थीं। भारत तक का रास्ता निकितिन के लिए रूस के विभिन्न प्रांतों तथा अज़रबैजान और ईरान देशों से होता हुआ गया था। यह रास्ता निश्चित रूप से अन्य यूरोपीय नाविकों के रास्तों से बिलकुल अलग था। यह पूर्वी यूरोप से एशिया पहुँचने का रास्ता था।

त्वेर से निकितिन अपने साथ जानवरों की छालें, फ़र वगैरह लेकर यात्रा पर निकले थे। हर अगली जगह पर जाकर वे पहली जगह से लायी चीज़ों को बेचते, मिले पैसों से नया माल ख़रीदते और आगे बढ़ते थे। यह नहीं कि उनकी यात्रा आसान रही, उन्हें भी लूट-ख़सोट तथा यात्रा से जुड़ी दूसरी परेशानियों का सामना करना पड़ा था।

भारत के लिए निकलने से पहले उन्होंने घोड़ा खरीदा था, बाक़ी पैसे अशर्फ़ियों में ले गए थे। बहमनी सल्तनत पहुँचने का उनका तजुर्बा अच्छा न रहा था। सुल्तान का फ़रमान था कि या तो वे इस्लाम क़ुबूलें या जान-माल से हाथ धोएँ। निकितिन ने अपनी डायरी 'तीन समुद्र पार यात्रा' में इस बात का ज़िक्र किया है। घोड़ा और माल तो गँवाना पड़ा था, लेकिन जान किसी तरह चमत्कारिक रूप से बच गयी थी। निकितिन भारत

ख़्वाजा अहमद अब्बास ने रूसी निदेशक वसीली प्रोनिन के साथ मिलकर अफ़ानासी निकितिन की भारत यात्रा पर फ़िल्म 'परदेसी' बनाई थी। इस फ़िल्म में नायिका की भूमिका में नरगिस हैं। निकितिन का किरदार रूसी नायक अलेग स्त्रीज़्हेनव ने अदा किया है। पृथ्वीराज कपूर ने भी इसमें भूमिका अदा की है।

में तीन साल रहे थे और दक्षिण की स्थानीय भाषाओं के साथ-साथ उन्होंने भारत की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सैन्य, प्रशासनिक सभी प्रणालियों को समझने-बूझने का प्रयत्न किया था और बहुत हद तक कामयाब भी रहे। डायरी में लिखी उनकी टिप्पणियाँ उस समय के भारत की गतिविधियों का दस्तावेज़ हैं।

मुसाफ़िर राह पर निकलता है तो महत्वाकांक्षाएँ साथ होती हैं, उम्मीदें होती हैं, मक़सद होते हैं; और इन सभी में मुख्य अपने वतन की वापसी होती है। सभी कठिनाइयाँ, चुनौतियाँ वह ख़ुशी-ख़ुशी स्वीकारता है क्योंकि उसे आख़िर में सुनहरे सपने साकार होते दीखते हैं। निकितिन अपने वतन रूस तो लौट आये थे लेकिन अपने घर त्वेर नहीं पहुँच सके थे। थोड़ी दूरी पर स्थित स्मलेंस्क में उनकी मृत्यु हो गयी थी।

ख़्वाजा अहमद अब्बास ने रूसी निदेशक वसीली प्रोनिन के साथ मिलकर अफ़ानासी निकितिन की भारत यात्रा पर फ़िल्म 'परदेसी' बनाई थी। इस फ़िल्म में नायिका की भूमिका में नरगिस हैं। निकितिन का किरदार रूसी नायक अलेग स्त्रीज़्हेनव ने अदा किया है। पृथ्वीराज कपूर ने भी इसमें भूमिका अदा की है।

त्वेर शहर के बीचोंबीच वोल्गा नदी के किनारे खड़ी अफ़ानासी निकितिन की प्रतिमा के बारे में अगर ग़ौर से सोचा जाए तो वह कुछ सदियों का ही इतिहास बयाँ करती है, लेकिन उसके साथ बहती वोल्गा तो न जाने कब से बस्तियों के बसने-उजड़ने को देखती आ रही है और आगे भी देखती रहेगी। नदी मानो यह कहती हुई लगती है कि बहना ही ज़िन्दगी है।

त्वेर की भौगोलिक विशेषता यह भी है कि यह मॉस्को और सेंट पीटर्सबर्ग के रास्ते में पड़ता है। ये दोनों शहर हमेशा से रूस के सबसे महत्त्वपूर्ण शहर रहे हैं और इनके बीच आवाजाही का अहम पड़ाव त्वेर रहा है। शाही समय से लेकर अब तक के कई क़िस्से इसकी दीवारों ने सुने हैं जिन्हें वे आते-जाते सैलानियों को बयाँ करती रहती हैं।

कुछ इन्हीं क़िस्सों और विचारों को लेकर हम अपने जहाज़ पर वापसी के सफ़र के लिए सवार हुए। एक सफ़र ख़त्म नहीं होता, इंसान दूसरे की योजना बनाने लगता है। बड़े जतन से बनाए घर में लौटना तो बहुत अच्छा लगता है लेकिन फ़ितरत यायावरी होने की वजह से इंसान कभी ख़यालों, कभी जज़्बात, तो कभी शहरो-गाँवों की गलियों में भटकता रहता है, उनमें सैर करता रहता है। हम और आप भी तो पत्रिका के पन्ने पलटकर अभी एक विधा से दूसरी का सफ़र ही कर रहे हैं!

■

कविता

डॉ. सरोजनी प्रीतम

मैलसी मुल्तान पश्चिम पकिस्तान (अविभाजित भारत) में जन्म। आपने एक नयी विधा 'हंसिका' को जन्म दिया। एकांकी, नाटक, उपन्यास और ललित निबंध संकलन सहित 18 पुस्तकें प्रकाशित।

ईमेल - srojinipritam@gmail.com

कविता

-डॉ. सरोजनी प्रीतम

राय साहब पत्नी के साथ
कवि सम्मेलन में
विशिष्ट अतिथि के रूप में आये
वक्तव्य दिया तथा बोले-
"मेरी यही राय ....
उनकी पत्नी चट से उठी, प्रणाम किया
तथा बोली- 'जी हाँ मैं ही इनकी राय'
उन्होंने- श्रीमती राय को, हड़बड़ाकर बैठने को कहा–
तथा खिसियाने होकर फिर कहा
'इसमे दो राय' नहीं
कि वह बोली हँसती हुई
अजी-
'दो-राय' हो भी कैसे सकती हैं
एक म्यान में दो तलवारें नहीं रह सकती
वे फिर से कुछ बोले- तभी
पत्रकार आये बोले
जी- अपनी राय भिजवा दें
वे बोलीं उनसे
क्यों भिजवा दें जी...
आपने जो पूछना है–
उनकी राय-यानि
मैं यही हूँ..
आप पूछ लें
पत्रकार ने अपना पता कार्ड
फोन नम्बर आदि जल्दी से देते हुए कह दिया
मैं जरा जल्दी में हूँ- आप अपनी राय यहीं भिजवा दें कृपया "
अभी वह कार्ड- फोन नम्बर- देख ही रही थी कि
एक अन्य पत्रकार उनके पास आये
पूछने लगे- “सर जनसंख्या वृद्धि पर रोक लगानी हो तो–
आपकी राय से- कितने बच्चे होने चाहिए "
पत्नी बौखलाई- वे और अधिक बौखलाये
पत्रकार बोल उठा- "मेरी राय यही है-
आप अपनी राय- बेशक बाद में भिजवाये.
सभागार में भी- ठहाके- तालियाँ-. में
तथा सहमति के स्वर यूँ थे'
हमारी राय भी यही है-.. के स्वर गूँजे

■

अमित कल्ला

जयपुर में जन्मे, कवि, चित्रकार अमित कल्ला एक स्वतंत्र चित्रकार के रूप में पिछले दो दशकों से सक्रिय हैं, बतौर कवि इनकी तीन पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। 'होने न होने से परे' पुस्तक को भारतीय ज्ञानपीठ के नवलेखन पुरस्कार से सम्मानित किया गया था।

ईमेल - amitkallaartist@gmail.com

कला और शिल्प : प्रमाणिकता, प्रासंगिकता

-अमित कल्ला

हमारे समाज में कला और शिल्प इन दोनों ही विषयों के बीच प्रमाणिकता, प्रासंगिकता और रचनात्मकता के स्फुरणों को लेकर भारी मतभेद हैं परस्पर दोनों के धरती और आकाश एक ही हैं, किन्तु विकास की वैचारिकी में बहुत अंतर हैं,कमोवेश मोटे तौर पर दोनों ही कला के अनन्य रूपक हैं जहाँ सतत अपने काम में लगे रहने की ज़रूरत होती है, जिसके दौरान कभी कभी कुछ सवाल भी खड़े होते हैं, इन सबके बीच मन अपने होने के मायने खोजने लगता है, जिसका तात्पर्य आत्ममुग्धता से कदापि नहीं है अपितु यहाँ एक ऐसा परिशुद्ध विचार है जो अव्यैक्तिकता के सोपानों को छूना चाहता है, जिसकी मंशा अपने भीतर के दायरों को खोलने की है । जिसकी गति उर्ध्व और अधो दोनों ही है जो एक दूसरे के सवालों से सवाल बनाते दीखते हैं, ऐसे में एक सवाल बार बार सामने आकर खड़ा होता है वह यह कि कलाकार होने के असल मायने क्या हैं, बुनियादी तौर पर दुनिया में उसका होना क्या और क्यों हैं । उदाहरण के लिए चित्रकला के सन्दर्भ में अगर हम बात करें तो किसी स्तर पर कोई भी कह सकता है की वह चित्रकार है और पेंटिंग करना उसका काम है, उसके बनाये गए चित्र के द्वारा बड़ी आसानी से उसकी प्रासंगिकता को रेखांकित किया जा सकता है, क्या इन्ही तमाम बातों में एक कलाकार का होना छिपा है या फिर कुछ अन्य सतहें भी है जिन्हें जाँचना परखना बेहद आवश्यक है । मुझे लगता है कि कलाकार होना अपने आपमें बड़ी जिम्मेदारी भरा सबब है, स्वयं एक कलाकार के लिए भी जिसे अपने होने को आधा-अधूरा जानना एक ग़फ़लत है, इस क्रम में प्रसिद्ध जर्मन मनोविज्ञानी

Mark Rothko

गेस्टॉल्ट और उनके बताये प्रत्यक्षीकरण का सूत्र याद आता हैं जहाँ वे "form अथवा personality as whole" का ब्यौरा देते हैं। सही अर्थों में एक सच्चे कलाकार का समूचा जीवन ही कलामय होता है जहाँ कला में जीवन या फिर जीवन में कला इस जुमले में फर्क कर पाना बहुत मुश्किलों भरा सबब है । निश्चित तौर पर किसी भी साधारण इंसान का कला को चुनना ही अपने आप में असाधारण-सा कृत्य है, चाहे उसका ताल्लुख किसी भी विधा अथवा फॉर्म से हो, यह चुनाव ही दर-असल अपने आपमें बड़ी चुनौती है, एक देखी अनदेखी तीखी तड़प

को अपने साथ सींचती हुयी चुनौती जहाँ प्रतिपल कुछ नया सृजन करने की आकांशा है, स्थापित लकीरों को मिटाने की चाहत के साथ अंतर्मन की उथलपुथल, जिसकी समाज में स्थापित मूल्यों से टकराहट है, निरंतर कुछ नया रचने की उत्साह भरी जुम्बिश, जिसमे रचना प्रक्रिया के माध्यम से देश और काल सरीखे पैमानों के पार जाने की ताकत है।

कला कभी भी एकांतिक नहीं हो सकती चाहे वह किसी भी स्वरूप में क्यों न हो, उसकी अपनी सामाजिकी जरूर होती है, अपने परिवेश से जुड़ते संस्कार और सरोकार अवश्य होते हैं जो कि कलाकार के माध्यम से अनेक रूपाकारों में अभिव्यक्त होते हैं, रचना की प्रायोगिक भिन्नता,व्यक्तिगत अभिव्यक्ति का उसका एक दूसरे से अलग होना इस पूरे क्रम में सौंदर्य का पर्याय है, जिसके मर्म की संवेदनशीलता को जल्द से जल्द समझ जाना और उस भिन्नता का सम्मान करना एक संवेदनशील समाज के लिए भी बेहद जरुरी है। कलाकार का अंतःकरण सदैव आंदोलित रहता है चेतन-अचेतन रूप से जिसकी सुनिश्चित अभिव्यक्ति उसके काम में साफ़ नज़र आती है जिसका आधार जीवन ही है, ये बेशकीमती जिन्दगी और उससे जुड़े फ़लसफ़े, बेशक उसके रूपांतरण में सृजनकर्ता का अपना अपना तरीका हो, जिसका सरोकार कलाकार की अपनी निजता और स्वतंत्रता से हो।

कहते हैं जो सहता है वही रहता है, कलाकार के जीवन में इस सहने के कई अर्थ होते हैं, जिससे गुज़र कर उसके विचार और उसकी कृति असल पकाव को पाते हैं, ये सहने का दौर अनंत तकलीफों के साथ-साथ बड़ा रोचक भी होता है, बारम्बार जहाँ खुद को गढ़ना और बिखेरना एक सतत प्रक्रिया का हिस्सा हो जाता है और क्रमशः उसकी जिन्दगी का भी अंतरंग हिस्सा । आज पूरी दुनिया को यह दिखने लगा है कि विज्ञानं अपने अंतिम पड़ावों पर है, मानवीय सभ्यता उसकी संगति की सीमाओं को छू कर अपने मूल नैसर्गिक स्वरूप में लौटना चाहती है, जिसे अपने दामन में ठहराव लिए कलाओं के सहारे की ज़रूरत है,सच्चे लेखक, कवि, कलाकारों की ज़रूरत है जो जीवन में फैले बेरुख़ी के बारूद को बे-असर करके कल्पना और यथार्थ के बीच साँस लेने की गुंजाईश पैदा करे उन अंतरालों को गढ़े जहाँ इस दौड़ती भागती दुनिया में कोई भी कुछ देर ठहर सके, अपने भीतर उठते उन स्वरों को सुन सके, अपने मन की कह सके जहाँ अधूरे में चाह हो पूरा होने की ताउम्र भटकता रहे वह रंगत पाने को बिन जाने ही उस पूरे पर मुक़र्रर अधूरे को ।

V S Gaytonde

अविनाश त्रिपाठी

फैजाबाद (उत्तर प्रदेश) में जन्म। सिनेमा से संबंधित लेखन। इंटरनेशनल आर्ट, कल्चर एंड सिनेमा फेस्टिवल के फाउंडर डायरेक्टर। विभिन्न सामाजिक और पर्यटन विषयों पर 700 से अधिक लघु फिल्मों का निर्माण व निर्देशन।

ईमेल - avigentle@gmail.com

ओ.टी.टी ने. बदला सिनेमा का आसमान

-अविनाश त्रिपाठी

ओ.टी.टी या वेब सीरीज ने फिर जैसे दरिया खोल दिया और एक तीव्र गति की बाढ़-सी आ गयी। नये-नये विषय, कहानी कहने का नया और मुख़्तलिफ़ लहजा, अब वेब सीरीज की खासियत थी।

19 वीं शताब्दी के आखिरी दिन थे और वृद्ध हो चुकी शताब्दी के सफ़ेद पैरहन पर एक दिन सफ़ेद पारदर्शी रौशनी कुछ चित्र खींच देती है। देखते ही देखते इन चित्रों में आत्मा आ जाती है और एक दूसरी दुनिया बसने लगती है। इस कला से परिपूर्ण दुनिया को विश्व, "सिनेमा" के नाम से जानने लगता है। सिनेमा भारत में जीवन के तनाव की सख्त धूप से बचाने वाला घने बादल का टुकड़ा है। स्याह अँधेरे में जब रौशनी के बादल छाते हैं तो ये उल्लास का सामाजिक उत्सव हो जाता है। थिएटर में फिल्म देखना सिर्फ फिल्म नहीं बल्कि एक सम्पूर्ण अनुभव है जिसमें सैकड़ों लोगों की सम्मिलित प्रतिक्रिया, हर दृश्य को जीवंत कर देती है।

सिनेमा भारत में भावनात्मक स्तर पर लोगों को जोड़ देता है। थिएटर में चल रहे एक ही दृश्य पर सैकड़ों लोग मुस्कुरा देते हैं, या रुंधे गले से हिचकियाँ लेते सुनाई दे जाते हैं। फिल्म देखकर, थिएटर से निकलते लोग, तीन घंटे की साँझा ज़िन्दगी, साँझी हँसी, आँसू, साथ लिए घर आ जाते हैं।

मनोरंजन के इस आकाश को एक घने बादल ने धीरे-धीरे घेरना शुरू किया। वक़्त ने इसका आकार और घनत्व बढ़ा दिया और ओ.टी.टी प्लेटफार्म नाम का ये बादल, बहुत कम समय में, ज़्यादातर घरों के ठीक ऊपर छा गया।

ओ.टी.टी या वेब सीरीज ने फिर जैसे दरिया खोल दिया और एक तीव्र गति की बाढ़-सी आ गयी। नये-नये विषय, कहानी कहने का नया और मुख़्तलिफ़ लहजा, अब

वेब सीरीज की खासियत थी। बहुत से ऐसे विषय, जिन्हें सिनेमा के व्यापार और माँग की वजह से उचित और व्यवहार्य नहीं माना जा रहा था, वो वेब सीरीज के केंद्र में आ गये।

अब सिनेमा का आसमान गुलाबी नहीं रहा, वहाँ पर इश्क़ की दास्ताँ, खूबसूरत लोग, स्विट्ज़रलैंड की वादियाँ और दिल को सहलाने वाला संगीत न होकर, क्राइम और जरायम की दुनिया, गाँव की उबड़-खाबड़ सड़कें और व्यवस्था, और दिल दहलाने वाला पार्श्व संगीत उभरने लगा। ओ.टी.टी ने सबसे पहले सामूहिक दर्शक को व्यक्तिगत उपभोक्ता में तब्दील किया और फिर उसकी ख्वाहिश से समझौता नहीं किया। अब अकेले अपने कमरे में फ़ोन या लैपटॉप पर बैठा ओ.टी.टी का ये उपभोक्ता अब वह देखने को विवश नहीं था जो पारिवारिक मनोरंजन के नाम पर उसे सालों से परोसा जा रहा था। युवा, उस भाषा में सच की निचली परत तक जाना चाहते थे, जो अक्सर तनाव, गुस्से में वो खुद इस्तेमाल करता था या उसे सुनायी देती थी। वो अब बेडरुम में बनते बिगड़ते रिश्ते की तह को अपनी नंगी आँखों के नीचे से गुज़ारना चाहता था जो भारतीय सभ्य समाज से हमेशा अव्हेलित रहा। 2016-17 में भारतीय मनोरंजन के आसमान में धीरे-धीरे टिमटिमाने वाले ओ.टी.टी चैनल को प्राण शक्ति तब मिल गयी जब 2020 की शुरुआत में कोरोना ने ज़्यादातर भारतीय को घर बिठा दिया था। सिनेमाहाल बंद हो गये थे और अपने कमरे में डरा सहमा बैठा व्यक्ति, मनोरंजन के इस नए माध्यम में से, अपने लिए कुछ खोजने लगा। अलग-अलग भाषा और अनूठे विषय की भरमार ने उसे चौंका दिया और वह अपनी ख्वाहिशो को 6 इंच के परदे पर जीने लगा।

सिनेमा से गाँव गायब हो गए थे लेकिन अब उसके पास 'पंचायत' थी जिसमें शहर से आये युवा पंचायत कर्मचारी को गाँव, सम्बंधित राजनीति और लोकाचार से रुबरू होना था। एक बड़े तबके के लोग अपने गाँव के दिनों को पंचायत के ज़रिये खँगालने लगे। बिना भाषा की विद्रूपता, फूहड़ गाँव और तथाकथित नामचीन सितारों के बिना भी "पंचायत" गाँवों से फिर एक बार मोहब्बत जगाने का जरिया बन गया।

सिनेमा से गाँव गायब हो गए थे लेकिन अब उसके पास 'पंचायत' थी जिसमें शहर से आये युवा पंचायत कर्मचारी को गाँव, सम्बंधित राजनीति और लोकाचार से रुबरु होना था। एक बड़े तबके के लोग अपने गाँव के दिनों को पंचायत के ज़रिये खँगालने लगे। बिना भाषा की विद्रूपता, फूहड़ गाँव और तथाकथित नामचीन सितारों के बिना भी "पंचायत" गाँवों से फिर एक बार मोहब्बत जगाने का जरिया बन गया। साइबर या फ़ोन क्राइम जैसे विषय, कभी भी भारतीय मुख्यधारा सिनेमा

के केंद्र में नहीं रहे लेकिन ओ.टी. टी ने 'जामताड़ा' बनाकर इस विषय को भी बेहद सजीव और रोमांचक बना दिया। फ़ोन से किये गए फ्रॉड और लोगों को बेवकूफ बनाते, कम पढ़े लिखे कुछ लड़कों का गिरोह, अचानक मनोरंजन की दुनिया की बड़ी खबरे बनने लगता है। बाक्साइट की खदानों के लिए मशहूर झारखंड का जिला जामताड़ा, अब फ़ोन क्राइम की पहली कतार में खड़ा हो जाता है। अनजान से चेहरे की यह वेब सीरीज, बेहद रोमांचक तरीके से नीरस समझे जाने वाले विषय को, बेहद लोकप्रिय बना देती है। 'स्टार ही लोगों को थिएटर तक ला सकता है और कहानी, स्टार के कंधे का मोहताज होती है', ये धारणा तेजी से बदलने लगती है।

भारतीय मनोरंजन को बड़े प्रोडक्शन हाउस की सामान्य लेकिन स्टार युक्त कहानियों के चंगुल से निकलते कुछ युवा, 'कोटा फैक्ट्री' जैसी वेब सीरीज लेकर आते है, जो कोचिंग करने आये छात्रों के संघर्ष, तनाव, उथल-पुथल को बखूबी दर्शाती है। टी.वी.एफ द्वारा बनायीं कोटा फैक्ट्री, के विषय से हिंदी सिनेमा हमेशा अनभिज्ञ बना रहा, जबकि भारत की बड़ी आबादी सालों से इस तनाव से गुज़र रही थी। नए विषय को परदे पर बिना बड़े सितारे के लाने से मुँह मोड़ता रंगमंचीय सिनेमा को, नयी वेब सीरीज अब राह दिखाती प्रतीत हो रही है। इसी टी.वी.एफ. ने देखा जाय तो भारत में वेब सीरीज या वेब एपिसोड की सालों पहले शुरुआत की थी जब अरुणाभ कुमार ने 'परमानेंट रुममेट्स' के नाम से दिलचस्प सीरीज, ओ.टी.टी प्लेटफार्म के यूट्यूब पर रिलीज़ की थी। डिजिटल स्पेस में धारावाहिक की तरह रिलीज़ हुई 'परमानेंट रुममेट्स' भारत की पहली वेब सीरीज रही है।

भारतीय मनोरंजन को बड़े प्रोडक्शन हाउस की सामान्य लेकिन स्टार युक्त कहानियों के चंगुल से निकलते कुछ युवा, 'कोटा फैक्ट्री' जैसी वेब सीरीज लेकर आते है, जो कोचिंग करने आये छात्रों के संघर्ष, तनाव, उथल-पुथल को बखूबी दर्शाती है। जबकि भारत की बड़ी आबादी सालों से इस तनाव से गुज़र रही थी।

भारत में सोच, रहन-सहन, ख़यालात, रीति-रिवाज़ और जनसांख्यिकीय अंतर की वजह से यहाँ पर अनेक तरह के विषय की स्वीकार्यता थी। इसी बात को ध्यान में रखकर, विश्व के सबसे बड़े ओ.टी.टी नेटफ्लिक्स ने 2018 में 'सेक्रेड गेम्स' से भारत के बाजार में कदम रखा और देखते-देखते भारत की शहरी आबादी के आँखों पर नए ख्वाब, और ज़बान पर नयी भाषा रख दी। विक्रम चंद्रा के नावेल को मुंबई क्राइम वर्ल्ड की प्लेट में रखकर परोसे गये निओ क्राइम, नॉयर की सीरीज में गणेश गाईतोंडे और सरताज सिंह छा गए। क्राइम, खुल कर दी जा रही गालियाँ और बिस्तर के छुपे हुए राज़ को उजागर करती बातें, वेब

सीरीज की शुरुआती यात्रा की सबसे प्रमुख सामग्री थी। भारतीय समाज का बड़ा हिस्सा, इन चीज़ो से महरूम था लेकिन सार्वजनिक प्रदर्शन से व्यक्तिगत होते ही इस समाज ने सबसे पहले अपनी अधूरी प्यास को जल चढ़ाना ज़रूरी समझा। उबाल के जाते ही फिर गुल्लक, दिल्ली क्राइम, जैसे बेहतरीन विषय, अपनी शानदार अदाएगी से आगे बढ़ने लगे। अब क्राइम में एक अलग किस्म का परिष्कार आ गया और कहानी 'स्पेशल ऑप्स' जैसी बेहतरीन वेब सीरीज में तब्दील होने लगी। कभी सिनेमा और आम इंसान के लिए सबसे नीरस समझे जाने वाले विषय 'शेयर मार्किट' और उसके सबसे बड़े खिलाडी हर्षद मेहता पर आधारित वेब सीरीज "स्कैम" आयी तो उसने दिल पर कब्ज़ा ही कर लिया।

प्रतीक गाँधी जैसे रंगमंच और सिनेमा में छोटे किरदार निभा रहे अभिनेता अब मुख्यधारा के बड़े अभिनेता बनकर उभरने लगे। रहस्यमय क़त्ल और उसकी तहकीकात के आस-पास घूमती कहानी जब 'क्रिमिनल जस्टिस' के रूप में आयी तो विक्रांत मैसी के रूप में एक नया सितारा मिला और पंकज त्रिपाठी जैसा अभिनेता, अब वेब सीरीज के सबसे भरोसेमंद चेहरे के रूप में उभरने लगा। हालाँकि मिर्जापुर से ही पंकज ने अपनी प्रतिभा और आम किरदार को ख़ास बनाने का हुनर सीख लिया था।

दशकों से इश्क़ की गुलाबी चादर, सर तक ओढ़कर बेसुध सो रहे रंगमंचीय सिनेमा को 'असुर', ग्रहण, सिटी ऑफ़ ड्रीम्स, फोर मोर शॉट्स प्लीज, आर्या जैसे विषय कभी भी बिकाऊ विषय नहीं लगे। प्यार के इर्द गिर्द 90 प्रतिशत कहानियाँ गढ़ते सिनेमा के लिए ओ.टी.टी निश्चित तौर पर क्रांति सरीखा है।

भाषायी विद्रूपता और कई बार अनावश्यक दैहिक दृश्य की प्रचुरता के बावजूद जिस तरह ओ.टी.टी ने नए और उबाऊ समझे जाने वाले विषयों को नयी रंगत में पेश किया है, उसने यकीनन सिनेमा के सुनहरे आकाश को ज़्यादा विस्तार वाला और ख़ूबसूरती में ज़री गोटे लगाकर, बेहद दर्शनीय बना दिया है।

पूरा परिवार सिनेमा देखने आएगा इस कारण सबके लिए कुछ पेश करने के भाव से निकलकर अब ओ.टी.टी, व्यक्तिगत ख्वाहिश और चाहत को भी अपने विषय बनाने लगा है। अब पूरा परिवार शायद साथ बैठ कर कहकहे नहीं लगाता है, और ज़रूरत से ज़्यादा संवेदना भरी फिल्म में साथ सिसकियाँ नहीं भरता है, लेकिन अकेले कमरे बैठकर छोटे से स्क्रीन पर दुनिया भर के विषयों को देखकर आश्चर्य मिश्रित ख़ुशी में मुस्कुराता ज़रूर है।

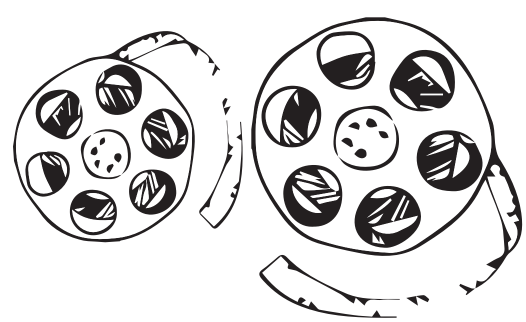

जयशंकर प्रसाद

बीती विभावरी जाग री

यहाँ सुनें »

बीती विभावरी जाग री!
अम्बर पनघट में डुबो रही
तारा-घट ऊषा नागरी!

खग-कुल कुल-कुल-सा बोल रहा
किसलय का अंचल डोल रहा
लो यह लतिका भी भर लाई-
मधु मुकुल नवल रस गागरी

अधरों में राग अमंद पिए
अलकों में मलयज बंद किए
तू अब तक सोई है आली
आँखों में भरे विहाग री!

अनूप कुमार शुक्ल

जन्म, कानपुर (उत्तर प्रदेश) में। हिन्दी ब्लॉगिंग में सक्रिय। भारत सरकार के रक्षा मंत्रालय के अंतर्गत 'ट्रुप कम्फर्ट लिमिटेड, कानपुर' में महाप्रबंधक के रूप में कार्यरत। अब तक छह पुस्तकें प्रकाशित।

ईमेल - anupkidak@gmail.com

मोबाइल चौपाल

-अनूप कुमार शुक्ल

एक दिन जाने क्या हुआ कि किसी ने घर के सारे मोबाइल एक मेज पर रख दिये। रख क्या दिये मेज पर लिटा दिये। ऐसा लगा कि सारे मोबाइल अगल-बगल की कब्रों में लेटे हुये हैं।

एक घर में कई मोबाइल रहते थे। तरह-तरह के। कोई पुराने माडल का, कोई एकदम नया। घर के अलग-अलग सदस्यों के साथ रहते-रहते मोबाइल की दिनचर्या भी उनके मालिकों के हिसाब से ढल गयी थी। कोई जेब में रहने का आदी था तो कोई पर्स में। किसी को तकिये के नीचे सुकून मिलता तो कोई मेज पर ही पड़ा रहता। लावारिश सा। किसी पर दिन भर फ़ोन आते तो किसी के कान घंटी सुनने को तरस जाते। मोबाइल एक ही घर में रहते परिवार के सदस्यों सरीखे आपस में कभी मिल नहीं पाते थे। कभी जेब में, पर्स में आते जाते दूसरे मोबाइल को देख भर लेते जैसे घर के सदस्य घर से बाहर आते-जाते एक दूसरे को देख लेते। कभी-कभी यह भी होता कि एक साथ घंटी बजने पर दूसरे के होने का पता चलता जैसे घर के सदस्य आते जाते बोल-बतिया लेते तो उनको लगता कि उनके अलावा कोई दूसरा भी है घर में।

एक दिन जाने क्या हुआ कि किसी ने घर के सारे मोबाइल एक मेज पर रख दिये। रख क्या दिये मेज पर लिटा दिये। ऐसा लगा कि सारे मोबाइल अगल-बगल की कब्रों में लेटे हुये हैं। पर कब्र लिखना ठीक नहीं होगा क्योंकि मोबाइल बाकायदा जिन्दा थे। उनमें घंटियाँ बजती थीं। वाइब्रशेसन मोड में नागिन डांस-सा करते तो लगता कि उनके पेट में मरोड़ सरीखी उठी है। हाथ से छूटकर कभी गिरते तो आवाज होती। इससे लगता कि शायद उनको भी चोट लगती हो। दर्द होता हो। गिरने पर चिल्लाते हों- 'अरे, बाप रे, हाय अम्मा। मर गये।'

गिरने पर किसी-किसी मोबाइल की तो बैटरी निकलकर उनसे इत्ती दूर जाकर गिरती कि मानों कसम खा रही हो कि कुछ

भी हो जाये अब इस मोबाइल के साथ नहीं रहना। इससे अब नहीं पटनी अपन की। लेकिन कुछ ही देर में शरीफ़ गृहस्थन सरीखी मोबाइल के करेंट सप्लाई करने लगती। तो जब साथ-साथ लेटे दिखे तो मोबाइल तो लगा कि किसी कोचिंग मंडी वाले शहर के किसी पेइंग गेस्ट वाले हास्टल में बच्चे एक के बगल में एक लेटे हुए हों। अब जब मोबाइलों ने एक-दूसरे को साथ-साथ देखा तो सब आपस में बतियाने लगे। अब वे मोबाइल थे कोई आदमी तो थे नहीं जो मिलने पर बातचीत की शुरुआत ही यह सोचकर नहीं कर पाते कि पहले कौन शुरु करे। मोबाइल एक दूसरे के हाल-चाल पूछने लगे। बतियाने लगे। कोई क्रम नहीं था उनकी बातचीत में। न हम उनकी भाषा समझते थे लेकिन अन्दाज लगा सकते हैं कि वे क्या बतियाये होंगे आपस में। उनमें सीनियारिटी, जूनियारिटी का भी कोई लफ़ड़ा नहीं था इसलिये बेतकुल्लुफ़ जो मन आ रहा था बतिया रहे थे। हमको जैसी समझ में आई उनकी बातें वैसी ही आपको बता रहे हैं।

एक एकदम नये से मोबाइल को सब मोबाइल को देखकर चौंधिया से गये। मोबाइल एकदम चमक सा रहा था। लेकिन मोबाइल के चेहरे पर दुख सा पसरा था। असल में वो घर में सबको बुजुर्ग सदस्य के साथ रहता था वो उस जमाने का था जब फ़ोन का मतलब सिर्फ़ 'हलो हलो' होता था। मोबाइल के तमाम नये से नये फ़ीचर उसके लिये बेमतलब थे। फ़ोन भी वो बस इतना ही प्रयोग करता जितना भयंकर डायबिटिक मिठाई खाता होगा। फ़ोन कभी वो खुद नहीं करता था। कोई फ़ोन आता तो काँपते हाथों उठाता और जरा देर में ही– 'अच्छा, रखते हैं' कहकर रख देता। फ़ोन बेचारा अपने सारे लेटेस्ट फ़ीचर के इस्तेमाल की तमन्ना लिये कुढ़ता रहता। उसको लगता कि जैसे इंजीनियरिंग करने के बाद संविदा पर पानी पिलाने के काम में लगा दिया गया हो। उसके हाल उन राल्स रायस कारों सरीखे थे जिनको एक राजा ने कूड़ा ढोने के काम में लगा दिया था। कभी-कभी वह ऐसे ही सोचने लगता जैसे की कब्र में पाँव लटकाये शेखों की एकदम नयी उमर की बीबियाँ सोचती होंगी। फ़ोन हमेशा में मनौती मानता रहता– 'हे भगवान हमको इसके पास से किसी नई वाले के पास भेजो। चोरी ही करा दो। कुछ तो उपयोग हो हमारा।' लेकिन उसकी बूढ़े मालिक से दूर जाने की हर तमन्ना अधूरी ही रह जाती क्योंकि बुजुर्गवार के पास और कोई काम तो था नहीं सो उसकी ही देखभाल करते।

एक बुजुर्ग मोबाइल जो देखने में ही

एकदम नये से मोबाइल को सब मोबाइल को देखकर चौंधिया से गये। मोबाइल एकदम चमक सा रहा था। लेकिन मोबाइल के चेहरे पर दुख सा पसरा था। असल में वो घर में सबको बुजुर्ग सदस्य के साथ रहता था

मार्गदर्शक मोबाइल टाइप लगा था अपने किस्से सुनाते हुये बोला- 'हम इस घर के पहले मोबाइल थे। घर के अकेले मोबाइल थे हम। सब हमको अपने हाथ में लपकते रहते। सब अपने-अपने तरह से प्रयोग करते हमको। कोई फ़ोटो खैंचता, कोई बतियाता, कोई गेम खेलता। उन दिनों फ़ोन की दरें इतनी सस्ती थी तो थीं नहीं कि जित्ता मन आये बतियाओ। लोग फ़ोन करते जो घड़ी देखते रहते कहीं ज्यादा खर्च न हो जाये। घड़ी देखने के चक्कर में यह भी भूल जाते बात क्या हुई। हर काल के बाद बैलेन्स चेक करते। खर्चा बचाने की गरज से फ़ोन करने अधिकार केवल बड़े लोगों को था। पर काल रिसीव करने का अधिकार सब लोगों को था। घंटी बजते ही बच्चे इत्ती तेज भागते बच्चे हमको उठाने के लिये कि अगर उत्ती तेज ओलम्पिक में भागते तो गोल्ड मेडल झटक लाते। बच्चे लोग गेम खेलते रहते। बीच की उमर वाले बच्चे जिनको फ़ोन करने की इजाजत नहीं थी वो मिस्ड काल करके अपने फ़ोन करने की हसरत मिटाते। कोई भी दस डिजिट का फ़ोन अपने मन मिलाते। नम्बर दस में नौ बार गलत होता। किसी एक नम्बर पर घंटी जाती तो खुश हो जाते और फ़ौरन फ़ोन काट देते कि कहीं उधर से उठ न जाये। सबके हाथ में रहते घूमते दिन कैसे बीत जाता पता ही नहीं चलता।

इसी बहाने हमारी तुम्हारी खुशनुमा याद तो है।' जब वह खुशनुमा कहती है तो मन कैसा हो जाता है वह नयी पीढी के तुम लोग नहीं समझोगे जो 'हलो, हाय बोलने के पहले आई लव यू बोलने के आदी हो गये हैं।'

नये वाले मोबाइल बुजुर्ग मोबाइल के हाल देखकर ताज्जुब करने लगे और सोचने लगे कहीं यह झूठ तो नहीं बोल रहा अपना भाव बढ़ाने के लिये। लेकिन उसकी हालत पर तरस खाकर वे कुछ बोले नहीं। बुजुर्ग मोबाइल बोला- 'अक्सर हमको अपने पास रखने के लिये घरवालों में बहस तक हो जाती। बच्चे हमारे लिये छीना झपटी करने लगते। एक दिन तो इतना हल्ला मचा कि घर वाले ने मारे गुस्से के हमको मेज पर पटक दिया। प्लास्टिक की मेज में तिकोना छेद हो गया। हमारी बैटरी अलग गिरी, कवर अलग, सिम कहीं और। हमारा तो रामनाम ही सत्य हो गया था। लेकिन पुराने जमाने के मोबाइल थे हम। फ़ौरन जुड़े और चलने लगे। अब भी जब कभी उस मेज पर धरे जाते हैं तो मेज अपने घाव की तरफ़ इशारा करते हुये कहती है तुम्हारे ही चक्कर में चोट खायी है हमने यह। हम भी मुस्करा के रह जाते हैं। कभी सारी बोलते हैं तो मेज झिड़क देती है कहते हुये- 'इसमें तुम्हारा क्या दोष। हम तो बने ही उपभोग के लिये हैं। इसी बहाने हमारी तुम्हारी खुशनुमा याद तो है।' जब वह खुशनुमा कहती है तो मन कैसा हो जाता है वह नयी पीढी के तुम लोग नहीं समझोगे जो 'हलो, हाय बोलने के पहले आई लव यू बोलने के आदी हो गये हैं।'

बुजुर्ग मोबाइल के किस्से को नये मोबाइल मुँह बाये सुन रहे थे। उसके हाल देखकर सब सोचने लगे कि बताओ कभी पूरे घर में राज करने वाले का हाल यह हो गया कि कोई पूछता तक उनको। पड़ा रहता एक कोने में मेज की दराज में। कोई पेपरवेट तक के काम के लिये उसका उपयोग नहीं करता। सब फ़ोनों को एक बार फ़िर से लगा कि किसी को अपने हाल पर बहुत घमंड नहीं करना चाहिये कि वही सबसे अच्छा है। एक दिन सबके इस बुजुर्ग मार्गदर्शक मोबाइल होने हैं जिसका उपयोग लोग मारपीट में ही करने की सोचेंगे।

कभी इस मोबाइल का जलवा सारी दुनिया में था। उसकी बैटरी भी निकली हुई थी। बिना बैटरी के मोबाइल ऐसे गृहस्थ सरीखा लग रहा था जिसकी घरवाली भरी बुढौती उसको अकेला छोड़कर चली गयी हो।

एक ब्लैकबेरी का मोबाइल बेचारा किसी आईसीयू में मरीज की तरह लेटा हुआ था। उसके अगल-बगल के रबड़ के पार्ट निकले हुये थे। एकदम अधनंगा सा लग रहा था मोबाइल। फ़टेहाल। सूखे इलाके के किसान सरीखा उजड़ा-उखड़ा मुँह। उसके हाल देखकर ऐसा लग रहा कि जैसे किसी पुरातात्विक इमारत के दरवाजे, खिड़कियाँ लोग निकालकर ले गये हों। देखकर लग ही नहीं था कि कभी इस मोबाइल का जलवा सारी दुनिया में था। उसकी बैटरी भी निकली हुई थी। बिना बैटरी के मोबाइल ऐसे गृहस्थ सरीखा लग रहा था जिसकी घरवाली भरी बुढौती उसको अकेला छोड़कर चली गयी हो।

ब्लैकबेरी मोबाइल कुछ बोल नहीं पा रहा था। उसका सिम भी हटा दिया गया था। उसके हाल उस दबंग दरोगा सरीखे थे जिसको कप्तान की बीबी की नाराजगी के चलते लाइन हाजिर करके किसी थाना किसी दूसरे दरोगा को थमा दिया गया हो। मोबाइल बेचारा अपने सिम और बैटरी के वियोग में उदास उजड़ी आँखों से दूसरे मोबाइलों को सूनी आँखों से ताक रहा था। सबने उसकी तरफ़ से आँखें फ़ेर लीं लेकिन वह अपना अपराध बोध बयान करने लगा-' हमारे साथ वाली बैटरी कभी हमको छोड़कर नहीं गयी। हमेशा हमारे साथ रही। हमारे कारण ही गरम होकर वह फ़ूल गयी। हमने बेमतलब उस पर शक किया और फ़िर कवर खोलकर बाहर कर दिया। पता नहीं कहाँ होगी वह आज। किसी कूड़ेदान में या किसी गाय के पेट में।' मोबाइल बेचारा बैटरी और बिछड़े सिम की याद में डूब गया।

जो मोबाइल नयी उमर के लोगों के पास थे उनके किस्से अलग टाइप के थे। वे इत्ती जल्दी-जल्दी अपनी बात कह रहे थे कि पता ही नहीं चल रहा था कि आवाज किसके मुँह से निकल रही थी।

एक बोला– 'हमारी तो बैटरी इत्ती जल्दी खतम हो जाती है उत्ती जल्दी तो बाबू लोग सरकारी ग्रांट भी नहीं खर्च कर पाते। इधर भरी उधर खल्लास। हमेशा पावरबैंक

के सहारे दिन कटता है। ऐसा लगता है जैसे डायलिसिस पर हों। जरा देर के लिये पावरबैंक हटा कि पूरा ब्लैक आऊट हो जाता है।'

दूसरा बोला- 'पहले ये चार्जिंग वाली पिन इत्ता जोर से चुभता थी जैसे कोई मोटी सुई चुभा रहा हो। अब हाल यह हो गये हैं कि चार्जिंग प्वाइंट और पिन दोनों इत्ती ढीली हो गयी हैं कि मिलते ही बुजुर्ग दम्पतियों की तरह झगड़ने लगते हैं। मिलते ही चिंगारी निकलती है। बिना चिंगारी निकले चार्ज ही नहीं होता। जाने कब नया जार्जर नसीब होगा।

सब मोबाइल बोलने लगे– 'बड़े बदमाश हो तुम! हमारी तो जान ही निकल गयी थी आत्महत्या की बात सुनकर।' उस मोबाइल ने सबको आँख मारी और सब हँसने लगे। सब तरफ़ उनकी हँसी गूँजने लगी।

वह कुछ और कहता तब तक बगल वाला मोबाइल बोला– 'आजकल हर मोबाइल नया चार्जर चाहता है। हरेक की तमन्ना रहती है कि उसको नया चार्जर चार्ज करे। लेकिन सिर्फ़ चाहने से होता तो फ़िर बात की क्या थी। जो भाग्य में बदा है उसी से निभाना पड़ता है।'

एक मोबाइल अपने धारक के गुणगान करने में लगा था। मेरी ये तो मुझे कभी कान के पास से हटाती ही नहीं। इसकी सब सहेलियाँ ईयर प्लग यूज करती हैं लेकिन ये मुझे हमेशा कान से सटा के रखती हैं। बोलती इत्ता धीरे हैं कि मेरे पर्दे को जरा सा भी फ़ील नहीं होता कि कोई बोल रहा है। ऐसा लगता है कोई शहद घोल रहा है। फ़ोन करने के बाद इत्ता आहिस्ते से रखती हैं पर्स में कि जरा सा भी झटका नहीं लगता।

अरे यार तुम्हारे भाग्य बढिया हैं जो ऐसे के साथ हो। हम जिस लड़के के साथ रहते हैं वो तो हमें ऐसे पटकता है जैसे पुराने जमाने में लोग नौकरियों से इस्तीफ़ा पटकते थे। हर काल के बाद फ़ेंक देता है बिस्तरे पर। हड्डी पसली हिल जाती है। लगता है हमसे छुट्टी पाना चाहता है। आजकल मोबाइल भी तो रोज नये-नये आ रहे हैं।

ऐसे ही तरह-तरह की बातें करते हुये मोबाइल लोग इतना अंतरंग हो गये कि आपस में फ़ुसफ़ुसाते हुये साझा करने लगे कि उनके मालिक उनका कैसे उपयोग करते हैं।

एक बोला– 'वो दिन भर में इत्ती सेल्फ़ी लेती है कि क्या बतायें। जितनी बार सेल्फ़ी लेती है मुझमें देखती है। मुझे कोसती है कि अच्छी नहीं आई फ़ोटो। अब हम मोबाइल हैं जैसा थोबड़ा होगा वैसा ही तो बतायेंगे मोबाइल से। कोई फ़ेसबुक फ़्रेंड थोड़ी हैं जो बिना देखे वाह, वाऊ, आसम, झकास, कटीली कहने लगें। तो वो फ़ोटो देखकर हमसे गुस्सा जाती है कि हमने अच्छी फ़ोटो नहीं खींची। पर वही फ़ोटो जब वो फ़ेसबुक पर अपलोड करती है तो बढिया कमेंट देखकर इत्ता प्यार से चूमती है कि बताते शरम आती है। मन करता है कि

वह सिर्फ़ अपनी फ़ोटो खैंचकर अपलोड करती रहे।'

दूसरा मोबाइल बताने लगा- 'हमारा मालिक तो इत्ता मेसेजिंग करता है कि हमको लगता है हम फ़ोन न हुये मेसेज कुली हो गयी। दो ठो सिम हैं। दोनों पर एक साथ तमाम लोगों से बतियाता है। सबसे कहता है सिर्फ़ तुमसे ही बात कर रहे हैं। इत्ता झूठ बोलता है कि कभी तो मन करता है फ़ेंक के बैटरी मारे इस झुट्ठे के मुँह में। इत्ते सारे झूठे संदेशे सीने में लादे-लादे छाती दर्द करने लगती है हमारी। लेकिन अब क्या करें। जैसा मालिक मिला है वैसा निभाना पड़ेगा।'

मेसेजिंग की बात एक मजेदार बात आई। एक मोबाइल ने किस्सा मोड में आते हुये बताना शुरु किया। एक बार हमारे वाले मेसेज कर रहे थे। भाव मारने के लिये अंग्रेजी में टाइप कर रहे थे। नई दोस्त बनी थी। सो लव और हेट वाले मोड में थे। दोनों कहते थे कि अगर साथ टूटा तो आत्महत्या कर लेगें। आजकल के प्रेमियों में जाने कौन सा फ़ैशन चला है कि वे जीने की बात करने बाद में करते हैं, मरने का हिसाब पहले बना लेते हैं। तो हुआ यह एक दिन आदतन शुरुआत करते ही 'आई लव यू' बोले। फ़िर ज्यादा ही इम्प्रेशन मारने के मूड में थे तो उनके लिये 'आई हेट' लिख दिये जो इस संग से चिढते हैं। अब जाने इंटरनेट कनेक्शन गड़बड़ा गया कि अंग्रेजी के हिज्जे आगे-पीछे हो गये उस तक संदेशा जो पहुँचा वो था- 'आई हेट यू।' उसने संदेश देखते ही सुसाइड कर लिया।

सब मोबाइल ओह, अरे, हाय दैया कहते हुये दुखी हो गये। इस पर उस मोबाइल ने बताया– 'अरे ऊ वाला सुसाइड नहीं यार, वो सुसाइड कर ली मतलब इनको ब्लाक कर दी। इनसे बातचीत बन्द की उसने। नये से बात करने लगे दोनों। नये से 'आई लव यू' होने लगा।

सब मोबाइल बोलने लगे- 'बड़े बदमाश हो तुम! हमारी तो जान ही निकल गयी थी आत्महत्या की बात सुनकर।'

उस मोबाइल ने सबको आँख मारी और सब हँसने लगे। सब तरफ़ उनकी हँसी गूँजने लगी। इस बीच घर के लोग भी जग गये और सब अपने-अपने मोबाइल उठाकर अपने-अपने काम में जुट गये।

■

प्रियदर्शन

राँची (झारखंड) में जन्म। उपन्यास, कहानी, कविता, आलोचना, पत्रकारिता, फ़िल्म, विचार संस्मरण आदि की 12 पुस्तकें प्रकाशित, एवं सात किताबों का अनुवाद तथा दो किताबें क्रमशः अंग्रेज़ी एवं मराठी में प्रकाशित।

ईमेल - priyadarshan.parag@gmail.com

सलीम साहब, काश आप हमारे संपादक होते

-प्रियदर्शन

‘सलीम साहब, आप करते क्या हैं?’ मैंने इस बार कुछ बेतकल्लूफ़ी से पूछा। इस बार सलीम भाई की आवाज में रुखापन था, ‘अरे भाई साहब, आप बताओ तो ये चक्कर क्या है?

व‘नमस्कार, आप सलीम भाई बोल रहे हैं?’

एक मिनट की चुप्पी रही, फिर ब़डी हिचकती सी आवाज़ आई, ‘जी कौन?’

‘आप गीदड़ भभकी का मतलब जानते हैं?’

‘जी..मतलब?’ आवाज़ में कुछ परेशानी और घबराहट सी चली आई थी।

‘जी, मैं बस इतना जानना चाह रहा था कि आपको गीदड़ भभकी का मतलब मालूम है न?’

‘मैं समझ नहीं पा रहा हूँ कि आप कहना क्या चाहते हैं?

‘भाई मेरे, गीदड़ भभकी का मतलब क्या होता है?’

‘जी किसी को झूठ-मूठ का धमकाना।‘

मुझे इस सलीम भाई की भाषिक समझ पर हैरानी हुई। जो गीदड़ भभकी का मतलब समझते हैं, वे भी ठीक से नहीं समझा पाते कि इसका सही अर्थ क्या है। यह आदमी तो तेज़ निकला। लेकिन क्या यह वही आदमी है?

‘सलीम साहब, आप करते क्या हैं?’ मैंने इस बार कुछ बेतकल्लूफ़ी से पूछा। इस बार सलीम भाई की आवाज में रुखापन था, ‘अरे भाई साहब, आप बताओ तो ये चक्कर क्या है? न जान न पहचान, बस गीदड़भभकी-गीदड़भभकी बोले जा रहे हो। मैंने तो किसी को नहीं दी धमकी?’

‘अरे आपने नहीं दी, आपको किसी ने तो दी होगी?’ मुझे अब इस चर्चा में आनंद आने लगा था।

'देखो भाई साहब, मैं फोन काट रहा हूँ। आप रेडियो वाले हो क्या, जो फोन करके लोगों को तंग करते हो? मेरे पास फालतू टाइम नहीं है।'

'अरे सलीम भाई, आप हमें नहीं जानते, मगर हम आपको जानते हैं। आपका नंबर मिलना हमारे लिए कितनी बड़ी राहत है, ये आपको नहीं पता।'

सलीम को समझ में नहीं आया कि वह क्या कहे।

'सलीम भाई, आप यह बताइए कि आप तो अप्रतिम घोष के ड्राइवर हैं न?'

'जी तो? आपको काम क्या है, मैं फोन काट रहा हूं।'

वाकई सलीम भाई ने फोन काट दिया। लेकिन हमारा काम इतने भर से हो चुका था।

मैं अप्रतिम घोष की ओर मुड़ा, सलीम भाई को गीदड़ भभकी शब्द का मतलब मालूम है।

'ठीक है, तब आप ये वर्ड यूज़ कर सकते हैं।' अप्रतिम घोष ने हंसते हुए कहा। मैं अपनी डेस्क में हँसते हुए कहा- हां लिख लो, पाकिस्तान की एक और गीदड़ भभकी। थोड़ी देर में हमारे टीवी चैनल 'फास्ट न्यूज़' पर यह पट्टी चल प़डी थी।

मैंने राहत की साँस ली। शिवना और मनजीत ने फँसा दिया था। दोनों अड़ गई थीं कि गीदड़ भभकी शब्द कोई नहीं समझता है, टीवी पर नहीं जाना चाहिए। मैं इन अँग्रेजीदां लड़कियों पर बरस पड़ा था,

'तुम दोनों नहीं जानती हो तो पूरा हिंदुस्तान नहीं जानता है?'

लेकिन मुझे जानकर निराशा हुई थी। अप्रतिम घोष को भी गीदड़ भभकी का अर्थ नहीं मालूम था।

ऐसे में रास्ता अप्रतिम घोष ने ही सुझाया था- सलीम से पूछ लेते हैं।

सलीम उनका ड्राइवर था। अप्रतिम घोष मानते थे कि टीवी चैनल पर हमें ऐसी हिंदी लिखनी चाहिए जो बिल्कुल आम आदमी समझ सके- आम आदमी, यानी उनका ड्राइवर, उनका माली, उनके घर काम करने वाले दूसरे लोग। यही पैमाना उनके लिए ख़बरों के चुनाव का भी था। बहुत गंभीर कुछ भी नहीं जाएगा, जो भी जाएगा, चटपटी शक्ल में जाएगा।

सलीम उनका ड्राइवर था। अप्रतिम घोष मानते थे कि टीवी चैनल पर हमें ऐसी हिंदी लिखनी चाहिए जो बिल्कुल आम आदमी समझ सके- आम आदमी, यानी उनका ड्राइवर, उनका माली...

अप्रतिम घोष हमारे 'फास्ट न्यूज' के संपादक थे- बहुत तेज़, पढे-लिखे, लेकिन हिंदी में हाथ इस कदर तंग था कि उनको भूख-प्यास लगती नहीं, लगता था, और पढ़ने की शौक हो जाया करती थी।

लेकिन हमें उनकी बात माननी थी। उन्होंने सलीम का नंबर दिया था। पूरे दफ़्तर में लोग चुप थे- या नाक-भौं सिकोड़ रहे थे। अकेला मैं था जो मुस्कुरा रहा था।

मुझे मालूम था, उन्होंने नंबर नहीं, आने वाले दिनों में किसी भी शब्द को चला लेने की एक चाबी दे दी है।

तो मैंने तय किया कि उस ड्राइवर से

दोस्ती 'केरेंगे'।

सलीम को मैं पहचानता था। वह अक्सर अप्रतिम को उसका बैग या टिफिन डब्बा पहुंचाने आया करता था। तो ऑफिस की पार्किंग में उसे खोज निकालना मुश्किल नहीं हुआ। वह पार्किंग में फुरसत में खड़े और भी ड्राइवरों के साथ गपशप में लगा था। कुछ देर बाद वह शायद चाय लेने या पानी पीने के लिए किनारे हुआ। मैंने पुकारा, 'सलीम भाई।

सलीम भाई ने हैरानी से मेरी ओर देखा- वे मुझे चेहरे से पहचानते थे। मैंने कहा, 'मैं अविनाश।" उन्होंने अदब से सिर हिलाया, जैसे बता रहे हों कि वे मुझे जानते हों।

'सलीम भाई, कल मैंने ही आपको फोन किया था'- सलीम भाई के चेहरे पर एक असमंजस उभरा- 'अरे वह गीद़ड भभकी वाला"।

कुछ हिचक कर उसने पूछा- 'क्यों सर? मैंने तो किसी को धमकी नहीं दी।'

'अरे, आप नहीं जानते, आपकी क्या हैसियत है। आप हमारे ऑफिस के सुपर एडिटर हैं।'

वह भौंचक्क देखता रहा। मैंने उसे समझाया- 'देखिए, आपके जो साहब हैं- अप्रतिम- वे मानते हैं कि टीवी की भाषा वही हो जो आपको समझ में आती हो। उस दिन सब कह रहे थे कि आपको गीदड़-भभकी शब्द नहीं आता। लेकिन मैंने कहा कि ज़रूर आता होगा। और आपने साबित किया कि आप पढ़े-लिखे हैं।'

सलीम मुस्कुराया। वह इतना सयाना तो था ही कि ऐसी तारीफ़ में फँसने की जो गुंजाइश होती है, उसका वह खयाल रखे। लेकिन मेरी गपशप का सिलसिला जारी रहा। मैंने उसके परिवार के बारे में पूछा- उसके दो बच्चे सरकारी स्कूलों में पढ़ते हैं, बीवी पहले दूसरे घरों में काम करती थी, जब से वह साहब, यानी अप्रतिम, का ड्राइवर लगा है तब से उसने छोड़ दिया है। साहब कभी-कभी गुस्सा जाते हैं, लेकिन दिल के बादशाह हैं। कोई कमी नहीं होने देते। इस साल बेटों का ऐडमिशन प्राइवेट स्कूल में करा देंगे। मैने सलीम का कंधा धपथपाया- सलीम साहब, आप अच्छे आदमी हैं तो दुनिया आपके साथ अच्छे से रहेगी। लोग कहें न कहें, लेकिन वे सामने वाले को समझते हैं। इतना ही पर्याप्त होना चाहिए- पर्याप्त समझते हैं न आप?' उसने सिर हिलाया। लेकिन मैंने फिर भी साफ़ किया- मतलब काफ़ी। सलीम साहब पहली बार खुले- 'सर, मैं दसवीं पास हूँ, लेकिन अखबार खूब पढ़ता हूँ- जानता हूँ परयाप्त।'

सलीम साहब, आप अच्छे आदमी हैं तो दुनिया आपके साथ अच्छे से रहेगी। लोग कहें न कहें, लेकिन वे सामने वाले को समझते हैं। इतना ही पर्याप्त होना चाहिए- पर्याप्त समझते हैं न आप?'

अगली सुबह शिवना और मनजीत स्क्रीन देखकर फिर कुछ आपस में फुसफुसा रही थीं। अप्रतिम से उन्होंने हिचकते हुए कहा- 'ये हेडलाइन समझ में आएगी?' अप्रतिम ने सर घुमा कर देखा- 'भारत के पास पर्याप्त हथियार नहीं'। वह समझ

गया, सर ये पर्याप्त शब्द हटा देना चाहिए। इसको तो सलीम समझेगा ही नहीं।

मैं हंसने लगा। मैंने कहा, जब आपने कसौटी बना दी है तो फोन कर लीजिए। अप्रतिम ने फिर सलीम को फोन किया। फोन पर बात करने के बाद वह हैरान-हक्का-बक्का मुड़ा- सलीम को तो पर्याप्त मालूम है। मैंने कहा, तब शब्द पास हो गया।

लेकिन इतना भर पर्याप्त नहीं था। मुझे इस अंग्रेजीदां टीम को नाकों चने चबवाने थे। तो फिर एक दिन सलीम से मिला। बातों-बातों में भारत-पाकिस्तान क्रिकेट मैच का ज़िक्र आया। मैने कहा, 'भारतीय टीम पाकिस्तान को नाकों चने चबवा देगी। आप समझते हैं न, नाकों चने चबाना?' सलीम हंसने लगा। अब तक वह भी जैसे इस खेल को समझने लगा था- 'सर आप फंसवा देंगे मुझे। साहब को मालूम हो गया तो मेरी तो छुट्टी समझिए। वैसे मैं नाकों चने चबाना समझता हूँ।'

तो अगली शाम शान से यह मुहावरा भी हमारे चैनल की स्क्रीन पर दमक रहा था। लेकिन सलीम साहब को जो एहसास था- वह मुझे भी था। अप्रतिम तेज़ है, सलीम और मेरी गपशप के बारे में जान जाएगा तो परेशान होगा भी और करेगा भी। तो मैंने तय किया कि सलीम को ज़्यादा नहीं फंसाना है। बेशक, कुछ कम प्रचलित, लेकिन जरूरी शब्द उसे बता देने हैं।

सलीम से धीरे-धीरे मेरी पटने लगी थी। हालांकि अब हम शब्दकोश का खेल बंद कर चुके थे। धीरे-धीरे मैं उससे दूरी भी बरतने की कोशिश में था। क्योंकि हाल के दिनों में जैसे ही मैं दफ़्तर से पांच मिनट की राहत के लिए निकलता, नीचे सलीम चिपक लेता। अब वह अपनी भाषिक समझ से ज्यादा अपने राजनीतिक ज्ञान का प्रदर्शन करने लगा था- 'देख लेना साहब, इस बार भी वही लोग जीतेंगे। आप लोग रोक नहीं पाएंगे। शायद वह इस बात को हमसे ज्यादा ठोस ढँग से समझता था कि सरकार जो भी चलाए, उसको बस ड्राइवरी करनी है तंग से मकान में रहना है, किसी तरह राशन जुटाना है और अपने-आप को जेल-अस्पताल और कचहरी से बचाए रखना है। वह शायद अपने उन दोस्तों के मुक़ाबले ज्यादा ख़ुशनसीब था जिनकी अलग-अलग वजहों से नौकरियां चली गई थीं। उसकी एक ही फ़िक्र थी- वह अप्रतिम घोष का ड्राइवर बना रहे।

वह शायद अपने उन दोस्तों के मुक़ाबले ज्यादा ख़ुशनसीब था जिनकी अलग-अलग वजहों से नौकरियां चली गई थीं। उसकी एक ही फ़िक्र थी- वह अप्रतिम घोष का ड्राइवर बना रहे।

'बहुत पावर वाले आदमी हैं साहब- कार में उनके पास इतने फोन आते हैं बड़े-बड़े लोगों के। नेता भी फोन करते हैं उनको', सलीम ने किसी राज की तरह यह बात मुझसे साझा की थी, हालांकि मुझे हँसता देख सकुचा गया था, 'आपको भी तो सब लोग फोन करते होंगे।'

'अरे नहीं, सलीम साहब, मैं ऐसा बड़ा पत्रकार नहीं हूँ। अप्रतिम मेरे भी बॉस हैं,' मैंने हंसते हुए ही कहा था- 'मैं तो बस आपको ही जान लूँ, बहुत है।'

और धीरे-धीरे सलीम को मैं जानने लगा था। वह गया से आया था। उसके पास फल्गू नदी की बहुत सी कहानियां थीं। उसने बताया- जो मुझे मालूम था- कि फल्गू में पानी नहीं होता, लेकिन जहां मुट्ठी से खोदिए वहीं मिल जाता है। लेकिन मुझे जो नहीं मालूम था, वह भी उसे मालूम था। उसने बताया कि फल्गू नदी को सीता मैया का शाप लगा है। उन्होंने विस्तार में बताया कि किस तरह सीता ने दशरथ का पिंडदान किया था और वट वृक्ष, तुलसी, फल्गू नदी आदि-आदि को गवाह बनाया था। लेकिन राम के सामने नदी पलट गई और नाराज़ सीता मैया ने कहा कि तू बिना पानी की नदी रहेगी।

सलीम 'सीता मैया' कहता है- यह बात भी मेरे लिए कम हैरानी की नहीं थी। मैंने लगभग गुस्ताख की तरह टोक भी दिया- 'अरे आप मुसलमान हैं कि हिंदू सलीम साहब। इतना तो मैं भी नहीं जानता। और सीता मैया कहना तो बड़ी बात है।'

सलीम कुछ सकुचा गया। फिर धीरे से बोला- पक्का नमाज़ी हूँ सर। लेकिन कहानियाँ तो सारी सुन रखी हैं। हमारे पड़ोस में पंडीजी थे जो सब बच्चों को सुनाते थे- मैं भी सुनता था। बड़ा मज़ा आता था। वो सीता मैया ही बोलते थे। बताते थे कि उनको भी सीता मैया का शाप है। गया के पंडित का पेट कभी नहीं भरेगा।'

'गया छोड़ क्यों आए?'

इस सवाल पर जैसे चुप्पी की एक फल्गू उसके भीतर बहने लगी- यह चुप्पी भी जैसे एक सूखी नदी थी। क्या मैं अपनी हथेली से पानी निकालने की कोशिश कर रहा हूँ?

मगर पानी बाहर आ रहा था। धीरे-धीरे। 'छोड़ना पड़ा। अब्बू को। मैं तो बस उनके साथ था।'

अब्बू को भी दिल्ली लुभाती थी। गया के ठहरे हुए गंधाते माहौल से दूर यहाँ बच्चों की परवरिश भी बेहतर होगी, ये मान कर वे सबको समेटे चले आए थे।

सलीम ने बताया- यह 1991 का साल था। वे सब डरे हुए थे। चाचू ने अब्बू को सलाह दी- गया छोड़ो, दिल्ली चले आओ। तब सलीम बस 8 साल का था।

अब्बू को भी दिल्ली लुभाती थी। गया के ठहरे हुए गंधाते माहौल से दूर यहाँ बच्चों की परवरिश भी बेहतर होगी, ये मान कर वे सबको समेटे चले आए थे। यहाँ आकर पाया कि जामियानगर की जिस तंग गली में उनका छोटा भाई रहता है, वहाँ एक पूरा परिवार क्या, एक अतिरिक्त आदमी भी नहीं अट सकता। लेकिन दिल्ली धीरे-धीरे सबको अटा लेती है। सलीम का परिवार भी अट ही गया। दिल्ली के सरकारी स्कूलों में

जो आधी-अधूरी पढ़ाई-लिखाई हुई, उसी के साथ ज़िंदगी चल पड़ी। अब तो ड्राइवरी करते क़रीब 10 साल होने जा रहे हैं।

अक्सर ऐसी कहानियाँ मुझे कुछ चुप कर देती हैं। हलक में कुछ फँसने लगता है। लगता है जिस महानगर के बहुत सारे आनंद हम बड़ी आसानी से ले ले रहे हैं, वह कुछ लोगों के सीने पर रोज़ किसी चट्टान की तरह गुज़रता है। उसी में उनकी उम्र कट जाती है। मुझे खयाल आया कि जिस पार्किंग में सलीम रोज़ कई घंटे अपने साहब का इंतजार करता है, उससे महज 50 मीटर दूर खड़ी विशाल इमारत से उसकी वास्तविक दूरी पूरी एक उम्र की है। वह इस दफ़्तर में अप्रतिम के ड्राइवर की तरह ही दाख़िल हो सकता है, हमारी तरह अधिकारपूर्वक नहीं।

तो इस चुप्पी से उबरने के लिए मैंने बात पलटी। 'बहुत दिन हो गए अप्रतिम को कोई नया शब्द सिखाए सलीम साहब। क्या ज्ञान दिया जाए?'

वह हँसने लगा था- 'जो आप बताइए साहब, बोल दूँगा।'

'विडंबना आप समझते हैं?'

सलीम कुछ हिचक गया- 'अखबारों में देखा तो है सर, लेकिन बता नहीं पाऊँगा।'

मुझे खयाल आया, यह तो हमारी डेस्क पर काम करने वालों के लिए भी भारी शब्द है। ख़ुद मैं यह शब्द टीवी पर चलाने से पहले सोचूंगा। यह भी खयाल आया कि सलीम साहब को इस शब्द का अर्थ समझाऊं कैसे।

मैंने कोशिश की- 'सलीम साहब, समझिए कि जो दिखाई पड़ता है और जो होता है, उसके बीच के फ़ासले को विडंबना कहते हैं।' मुझे नहीं लगा कि उनको ज़्यादा कुछ समझ में आया है। फिर मैंने समझाया- 'मान लीजिए, आप बहुत उदास हैं, बिल्कुल रोने का मन कर रहा है, लेकिन हालात ऐसे हैं कि आप हँसने का दिखावा कर सकते हैं। यह विडंबना है। मान लीजिए, आपकी कंपनी लाखों का मुनाफ़ा कमाती है, लेकिन आपके हाथ कुछ नहीं आता- यह विडंबना है।'

इस चुप्पी से उबरने के लिए मैंने बात पलटी। 'बहुत दिन हो गए अप्रतिम को कोई नया शब्द सिखाए सलीम साहब। क्या ज्ञान दिया जाए?'

सलीम साहब ने अब सिर हिलाया, 'समझ गया सर।'

तो अगली सुबह 'फ़ास्ट न्यूज' की स्क्रीन पर विडंबना दिखाई पड़ रही थी। शिवना और मनजीत ने बिल्कुल बगावत कर दी थी। अप्रतिम भी हैरान थे। उन्होंने मुझे टोकने की हिम्मत नहीं की। कुछ देर किसी से बात करते रहे- मैं समझ गया, वे सलीम साहब से ज्ञान ले रहे हैं। कुछ देर बाद उन्होंने फोन काट दिया।

कुछ देर बाद वे टहलते हुए मेरे पास आए- 'अविनाश, मेरा ड्राइवर सलीम कुछ

ज़्यादा ही पढ़ा लिखा है। विडंबना तो हमको ऐसे बताया जैसे प्रोफेसर लोग नहीं बता सकता है।'

'अच्छा?', मैं हँसने लगा। मैंने बात दूसरी तरफ मोड़ने की कोशिश की- 'असल में, कई बार मुझे लगता है कि हम लोग गरीब और कमज़ोर लोगों के आईक्यू लेवल को बहुत कम मान कर चलते हैं लेकिन उनमें से कई लोग समझदार और पढ़े-लिखे भी होते हैं। आखिर पहले भी टीवी-अखबार फिल्में जनता के बीच लोकप्रिय रहे हैं, जबकि उनकी भाषा आसान नहीं होती थी। मुगले आजम कितनी टफ़ उर्दू में थी- लेकिन कितनी पसंद की गई?'

'हो सकता है, आपका बात ठीक हो, लेकिन अभी हम इस बहस के मूड में नहीं हैं। हमको कुछ और लग रहा है।'

मैं चौकन्ना हो गया- 'क्या लग रहा है?'

'यही कि आप उसके नए टीचर है। मैंने कई बार आप दोनों को साथ देखा है।' मुझे सकपका जाना चाहिए था, लेकिन मैं सकपकाया नहीं। मुझे मालूम था, वह अंधेरे में तीर छोड़ रहा है। मैंने कहा- 'अरे, मुझे इतनी फुरसत होती तो यहीं लोगों को सुधार न देता। बाहर आपके ड्राइवर को सुधार कर क्या मिलना है।"

अप्रतिम भी हँसे और उनके साथ बाक़ी सब भी। लेकिन मैंने तय किया कि अब सलीम के साथ इस तरह खुल कर मिलना उनको खतरे में डालना होगा।

लेकिन सलीम साहब ख़तरे में पड़ चुके थे। दो-चार बार की गपशप में अप्रतिम ने जान लिया था कि मैंने उनसे बातचीत की है। वह रंजीदा था।

तो मैंने सलीम साहब से मिलना छोड़ दिया। मुझे अंदाज़ा था कि अप्रतिम किसी कार्रवाई से पहले सीधे सबूत की तलाश में होगा। लेकिन यह मामला टीवी चैनल कुछ क़डी हिंदी चलाने भर का नहीं रह गया था, अप्रतिम को यह अपने आदेश की मुख़ालफ़त भी लग रहा था। इसका प्रतिशोध उसने दूसरे ढंग से लिया- चैनल पर ऐसे अंग्रेजी शब्द चलवाए, जो मुझे बिल्कुल मंज़ूर न होते। एक बार मैंने 'चॉपर' शब्द का इस्तेमाल देखा, टोका तो अप्रतिम ने ठंडे ढंग से कहा- 'अविनाश जी, लोग चॉपर समझते हैं।' मैं समझ गया, मुझे समझ जाना चाहिए।

शिवना-मनजीत मुझे रोज़ देखतीं और सोचतीं कि अविनाश इन दिनों कोई ऐसा शब्द क्यों नहीं चला रहा है। मेरी भी दिलचस्पी ऐसे प्रयोग में कम हो गई थी-

धीरे-धीरे हालात सामान्य होने लगे थे। अप्रतिम संतुष्ट था कि चैनल पर कोई कड़ा हिंदी शब्द नहीं जा रहा है। शिवना-मनजीत मुझे रोज़ देखतीं और सोचतीं कि अविनाश इन दिनों कोई ऐसा शब्द क्यों नहीं चला रहा है। मेरी भी दिलचस्पी ऐसे प्रयोग में कम हो गई थी- जो चैनल का संपादक है, वह तय करेगा, क्या लिखा जाएगा, क्या नहीं। मैं कौन होता हूँ तय करने वाला।

लेकिन एक आदमी था जिसकी दिलचस्पी बनी हुई थी।

दो-तीन महीने बाद अचानक एक दिन सलीम का फोन आया। मैं हैरान हुआ- 'क्या सलीम साहब। कैसे याद किया?' उसने अपने जाने-पहचाने अंदाज़ में कहा- 'आप भूल गए तो मुझे याद करना पड़ा साहब।' मैं हँसा, 'अरे आपके भले के लिए भूला था सलीम साहब।'

'अरे नहीं साहब, मिलना है एक बार। अभी।'

मैं कुछ हैरान हुआ। काम छोड़ कर नीचे उतरा। सलीम बेताबी से मेरी राह देख रहा था। मुझे देख लगभग दौड़ते हुए पास आया। 'देखिए साहब, मैंने क्या किया है?' उसने अपना मोबाइल दिखाया- 'देखिए, मैंने शूट किया है। जलती हुई कार।' उसने बताया कि इन दिनों वह टीवी देखने लगा है और देखता है कि ऐसे फोटो खूब चलते हैं। वाकई यह धू-धू जलती कार हमारे 'खबरें फटाफट' का हिस्सा हो सकती है। मैंने उससे यह क्लिप ली, उसको धन्यवाद दिया और फिर इसका इस्तेमाल भी कर लिया।

लेकिन सलीम अब ड्राइवर से ज़्यादा पत्रकार हुआ जा रहा था। दो-चार बार उसने गाड़ियों के हादसों की तस्वीरें भेजीं और मैंने उनका मन रखने के लिए लगा लीं। अप्रतिम भी उनके इस बदलाव को लक्ष्य कर रहा था। ड्राइवरी वह अब भी करता था, लेकिन अब वह अप्रतिम से पहले के मुकाबले ज्यादा बात करने लगा था। उसका ध्यान अब सड़क से ज़्यादा दूसरी चीज़ों पर रहने लगा था। अप्रतिम ने उसे टोक भी दिया था- 'सलीम, लगता है तुम्हारी अविनाश से कुछ ज़्यादा दोस्ती हो गई है।'

सलीम इतना भर सयाना निकला कि उसने कभी-कभार बातचीत की बात तो मानी, लेकिन बाकी गोल कर गया। लेकिन पत्रकारिता का उसका नशा बढ़ता जा रहा था और आलोचक नज़र भी तीखी होती जा रही थी। पहले अप्रतिम की साहबी से वह संतुष्ट रहता, अब चैनल से असंतुष्ट रहने लगा था। उसका कहना था- ये टीवी वाले बहुत गलत-सलत दिखाते हैं। गरीब आदमी की बात नहीं दिखाते हैं। भूत-प्रेत दिखाएंगे और बोलेंगे, सब यही देखते हैं। अरे भाई, कोई गंभीर चीज़ समझाओ तो हम सीखें और हमारे बच्चे सीखें। लेकिन यहां तो सब तमाशा करते हैं।

सलीम इतना भर सयाना निकला कि उसने कभी-कभार बातचीत की बात तो मानी, लेकिन बाकी गोल कर गया। लेकिन पत्रकारिता का उसका नशा बढ़ता जा रहा था...

लेकिन सलीम का उत्साह कम होने की जगह बढ़ता जा रहा था। उसे धीरे-धीरे यह भरोसा हो चला था कि उसके साहब की दुनिया बहुत नकली है और उनको असली लोगों की दिक्कतों का पता नहीं है। एक दिन वह कबाड़ी वालों से बात कर आया। एक दिन एक रैनबसेरे तक पहुँच गया। वह

कुछ नहीं करता था, बस लोगों से बात करता था। बात करते-करते कई मार्मिक कहानियाँ निकल आतीं। भूख की कहानियाँ, सर्द रातों में ठिठुरती देहों की कहानियाँ, पुलिस की पिटाई की कहानियाँ और रोज़-रोज़ तरह-तरह से ठोकर मारे जाने की कहानियाँ।

उसके घिसे हुए से मोबाइल की स्क्रीन पर ये कहानियां देख अक्सर मुझे ख़याल आता कि सच्ची पत्रकारिता कितनी आसान है। रंग झूठ पर पोतना पड़ता है, कलई नकली दावों पर चढ़ानी पड़ती है- सच तो बिना भाषा के प्रगट हो जाता है। वह दिखता रहता है, लेकिन हम देखने को तैयार नहीं होते।

उसके घिसे हुए से मोबाइल की स्क्रीन पर ये कहानियां देख अक्सर मुझे ख़याल आता कि सच्ची पत्रकारिता कितनी आसान है। रंग झूठ पर पोतना पड़ता है, कलई नकली दावों पर चढ़ानी पड़ती है-

मैं भी सलीम की लाई हुई ये सच्चाइयाँ देखने को तैयार नहीं था। वे 'डाउन मार्केट' कहानियाँ हमारे काम की नहीं थीं। कुछ कहानियाँ तो इतनी तीखी थीं कि देखने वाले की भूख-प्यास कुछ देर के लिए मर जाए। हम ऐसी कहानियाँ नहीं चला सकते थे। हमें कुछ चटपटा चाहिए था- जो हमारे फटाफट वाले कंसेप्ट में समा जाए। या फिर जो बड़ा गॉसिप बन सके।

धीरे-धीरे सलीम मुझसे भी रंजीदा रहने लगा। एक बार शिकायत भी की- 'सर, आपको तो सही आदमी समझता था। लेकिन आप भी डर-डर के काम करते हो।'

उसने ताना मारा- 'पत्रकार ऐसा होता है क्या?'

मगर बेचारे सलीम की हैसियत ऐसी नहीं थी कि उसका ताना मुझ पर असर करता। मैंने पलट कर पूछा, 'फिर कैसा होता है?'

'सर, आप जानते नहीं हो कि लोग क्या देखना चाहते हैं। आप बस उनको अफीम चटाते रहते हो- बस अफीम। मेरा तो मन करता है कि मैं अपना टीवी फोड़ दू।'

मैं हसने लगा, 'वही, जो अप्रतिम ने दिलाया है?'

वह भी हँसने लगा- 'हाँ, सच में। मेरा तो कोई नुक़सान भी नहीं होगा।

लेकिन वह अपना नुकसान कराने को तैयार था। अप्रतिम की शिकायत उससे बढ़ती जा रही थी और उसकी अप्रतिम से। एकाध बार उसने अप्रतिम को भी कुछ समझाने की कोशिश की। डाँट खाकर रह गया। पहले वह खुशी-खुशी अप्रतिम का काम कर देता था, लेकिन धीरे-धीरे उससे बचने लगा। एक बार उसने मुझसे कहा, 'सर, ड्राइवर हूँ उनका, लेकिन नौकर नहीं हूँ। टीवी पर तो नोटबंदी की तारीफ़ करते रहे और मुझे रोज़ अपने पैसे बदलवाने के लिए लाइन में लगाए रखा। आगे से मना कर दूँगा।'

उसने मुझे बताया नहीं, लेकिन किसी दिन ज़रूर कुछ ऐसा हो गया था। उस दिन अप्रतिम बहुत उखड़े हुए ढंग से ऊपर आया। उसने टीवी पर जो कुछ चल रहा था,

उसे वाहियात बताते हुए लगभग मुझे डाँटना शुरू कर दिया- 'आप इतने सीनियर आदमी हैं। ठीक से देख नहीं सकते कि क्या चलना चाहिए क्या नहीं। खाली हिंदी-हिंदी करते रहते हैं। और कुछ समझ में नहीं आता है आपको?'

मैं हैरान था। इस आदमी को क्या हो गया है। जैसा चाहता है, वैसी ख़बरें हम चलाते हैं। ज्योतिष, जादू-टोना, स्वर्ग की राह- सब इसी के कहने पर बनाते और बताते हैं। यह हम भूल चुके हैं कि असल पत्रकारिता होती क्या है। सरकार के पीछे-पीछे चलते रहते हैं। मेरा मन हुआ, मैं इस्तीफ़ा दे दूं। लेकिन मेरी हिम्मत नहीं पड़ी।

मैं हैरान था। इस आदमी को क्या हो गया है। जैसा चाहता है, वैसी ख़बरें हम चलाते हैं। ज्योतिष, जादू-टोना, स्वर्ग की राह- सब इसी के कहने पर बनाते और बताते हैं।

लेकिन उस वक़्त काम करने का भी मन नहीं था। मैंने सहयोगियों से कहा कि कुछ देर टहल कर आता हूँ। सबने सहानुभूति में सिर हिलाया।

नीचे उतरा तो मुझे सलीम मिला। उत्साह से भरा।

मेरा उससे बात करने का बिल्कुल मन नहीं था। लेकिन उसे इसकी परवाह नहीं थी। वह बता रहा था- 'पता है, मैंने क्या किया? आज तो साहब को सबके सामने बेइज़्ज़त कर दिया।'

मेरा मुँह खुला का खुला रह गया- 'आपने अप्रतिम को बेइज़्ज़त कर दिया?'

'हाँ साहब, आज रास्ते भर मुझे डाँटता आ रहा था- कि तुम्हारा मन गाड़ी चलाने में नहीं लग रहा है। तुम हीरो बनने चले हो। रिपोर्टर बनने चले हो। उसने कहा, छुट्टी कर दूँगा।'

'फिर?' मैं अपनी तकलीफ जैसे एक लम्हे के लिए भूल गया।

'अरे साहब, जब यहाँ उतरा तो मैंने उसको डाँटना शुरू किया। सारे ड्राइवर जमा हो गए। गार्ड सब भी। सब मुझे रोक रहे थे। लेकिन मैं बोले जा रहा था। मैंने कहा, 'मैं जैसी गाड़ी चलाता हूँ, तू वैसा चैनल नहीं चलाता। तू तो पूरे देश से धोखा करता है, गरीब आदमी से धोखा करता है। सबसे सच बोलने का दावा करता है, झूठ पर झूठ बोलता रहता है। और हम लोगों को अनपढ़ बताता है।" मैंने कहा, तू मुझे क्या निकालेगा। मैं ख़ुद निकल जाता हूँ। तो साहब मैंने नौकरी छोड़ दी।

'अब आगे क्या करेंगे सलीम साहब?' मैंने पूछा।

'जो भी करूँगा साहब, लेकिन ऐसे आदमी की गुलामी नहीं करूँगा। टैक्सी चला लूँगा, किसी और की ड्राइवरी कर लूँगा। लेकिन साहब, रिपोर्टिंग तो करता रहूँगा। देखिए, मैंने पैसा बचाकर नया मोबाइल भी ले लिया है।'

'लेकिन रिपोर्टर बनना इतना आसान नहीं है सलीम साहब।' मैं कुछ अवाक भी था और उनके लिए मायूस भी।

'मुझे मालूम है साहब, कोई इस अनपढ़ को रिपोर्टर नहीं बनाएगा। लेकिन कोशिश तो करूँगा। यह मलाल तो नहीं रहेगा कि कोशिश नहीं की। एक गुलाम आदमी की गुलामी नहीं करूँगा।'

मैं समझ गया, उसका इशारा अप्रतिम की ओर था। मैं फीकी हँसी हँसा।

'सर, आप भी छोड़ दो। आप समझदार आदमी हो। क्यों ऐसे फालतू चैनल में काम करते हो।'

मैं चुप रहा- फिर मैंने धीरे से कहा- 'आप तो ड्राइवरी कर लेंगे कहीं भी सलीम साहब, मैं क्या करूँगा।'

'अरे आपको भी कुछ न कुछ काम मिल जाएगा साहब।'

फि वह हँसा, 'एक बात कहूँ साहब, आपने बहुत सारे शब्द सिखाए हैं। आपसे बहुत कुछ सीखा। लेकिन एक शब्द आप ख़ुद भूल गए हैं।'

मैंने पूछा कुछ नहीं, बस हैरान-सा उसकी ओर देखता रहा।

उसने बहुत हिचकते-हिचकते कहा, 'खुद्दारी।' फिर बोल कर कुछ सहम सा गया।

इस बार मैं मुस्कुरा तक नहीं सका। चुपचाप वापस मुड़ कर सीढ़ियाँ चढ़ने लगा। हॉल में पहुँचा- ख़बर चल रही थी- 'भारत के सेल्फ एस्टीम को चुनौती न दे पाकिस्तान।'

लेकिन मेरे सेल्फ एस्टीम को चुनौती दी गई थी।

मैंने सख्ती से कहा, 'सेल्फ एस्टीम हटाओ, खुद्दारी लिखो।'

अप्रतिम ने दूर से कहा- नहीं, खुद्दारी कोई नहीं समझता।

मैं उसकी ओर मुड़ा। सख़्ती से उसकी आँखों में देखता रहा- 'ख़ुद्दारी सब समझते हैं।'

अपने आदेश को दी जा रही ऐसी चुनौती पर एकबारगी अप्रतिम हैरान रह गया। उसने कड़क कर कहा, 'जो कह रहा हूँ, चुपचाप सुनिए। समझ में नहीं आता आपको?

लेकिन वह समझ नहीं पाया था कि एक चोट ने मुझे क्या-क्या सिखा दिया है। अब हतप्रभ होने की बारी उसकी थी। मैं लगभग चीख रहा था, 'नीचे गालियाँ खाकर आते हो, ऊपर गालियाँए देते हो। चैनल पर तमाशा चलाते हो और पत्रकारिता बताते हो। तुम्हें नहीं मालूम होगा, खुद्दारी का मतलब क्या होता है, मुझे तो याद आ गया है।'

सब अवाक मुझे देख रहे थे। एक-दो साथियों ने मुझे रोकने की कोशिश की, मैंने उनका हाथ झटक दिया।

मैं अपना इस्तीफ़ा लिख रहा था।

नीचे उतरा तो सलीम मिला, कुछ परेशान सा- 'साहब, आपको क्या-क्या बोल गया, माफ़ कर दीजिए।'

'अरे नहीं सलीम साहब', मैं जोर से हंसा- अपनी आवाज की स्वाभाविक खनक के साथ- 'काश कि आप मेरे संपादक होते।'

■

डॉ. राजम नटराजन पिल्लै

महाराष्ट्र में जन्म। शिक्षण के क्षेत्र में कार्यरत। एक काव्य संग्रह 'उत्तराधिकार' प्रकाशित। भारत सरकार, महाराष्ट्र सरकार, उत्तर प्रदेश सरकार से सम्मान प्राप्त।

ईमेल - dr_rajam_pillai@yahoo.com

तुम्हारा अपना नाम क्या है गांधारी?

-डॉ. राजम नटराजन पिल्लै

गांधार में जन्मी
हर लड़की गांधारी होती है
भेड़-बकरी चराने वाली भी
गुलामों की मंडियों में बिकने वाली भी

तुम्हारा अपना नाम
क्या है गांधारी?
राजा सुबल की तुम बेटी हो
पिता किस नाम से पुकारते थे?
माँ की ममता किस नाम से पुचकारती थी?
भाई शकुनी किस नाम से आवाज़ देता था?
तुम्हारा अपना नाम
क्या है 'गांधारी'?

वंशाभिमानी भीष्म ने
किसे पुत्रवधू बनाया था?
जन्मांध जीवन सहचर धृतराष्ट्र ने
किसे वचन दिया था?
आँखों पर आजीवन
पट्टी बाँधने का संकल्प
जब तुमने किया था
तो गांधार की पहाड़ियाँ
कौन सा नाम लेकर
चीख उठी थी?

क्या नैहर, ननिहाल, पीहर, ससुराल
किसी स्थान पर
तुम्हारा कोई अपना
व्यक्तिगत नाम ही नहीं था?
ऐसा ही होगा, वरना
माँ, पिता, भाई, पति, ससुर
किसी ने भी ज़िद करके
मनुहार करके, डाँट-डपट कर
तुम्हारी पट्टी क्यों नहीं खुलवाई?

नाम तो पहाड़ों के भी होते हैं!
नाम तो नदियों के भी होते हैं !
झीलों के भी, टापुओं के भी!

महानायकों के तो
घोड़े, हाथी, हथियारों के भी
नाम होते हैं!
उच्चैः‌श्रवस, ऐरावत जैसे
गांडीव, सुदर्शन, पाँचजन्य जैसे
अविस्मरणीय नाम!
वस्तुओं के नाम हैं, तुम्हारा नहीं?

तुम्हें तुम्हारा अपना नाम देकर
शायद, भूल गए सब लोग!
क्योंकि अनावश्यक था वह
उनके लिए, सब के लिये
तुम केवल एक राजनीतिक
इयत्ता थी
एक कूटनीतिक लेन- देन !

वरना तुम्हारा कोई अपना नाम
क्यों नहीं है गांधारी?

■

बालेन्दु शर्मा दाधीच

जयपुर, राजस्थान (भारत) में जन्मे, भारतीय भाषाएँ और सुगम्यता, माइक्रोसॉफ्ट में निदेशक के पद पर कार्यरत बालेन्दु शर्मा दाधीच, लेखक, संपादक, स्तंभकार हैं। हिन्दी प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में व भाषायी तकनीक के विकास के क्षेत्र में लगातार सक्रिय। राष्ट्रपति सम्मान सहित दर्जनों भारतीय तथा वैश्विक पुरस्कारों से अलंकृत।

ईमेल - balendu@gmail.com

साल के 109 दिन मोबाइल के खाते में!

-बालेन्दु शर्मा दाधीच

मोबाइल फोन के आविष्कारक मार्टिन कूपर ने इस बात पर चिंता जताई है कि लोग मोबाइल फोन पर बहुत ज्यादा समय बिता रहे हैं। उन्होंने ऐसे लोगों को सलाह दी है कि मोबाइल छोड़ो, जिंदगी जीने पर ध्यान दो। जब कूपर से पूछा गया कि वे खुद दिन में कितने घंटे मोबाइल फोन का प्रयोग करते हैं तो उन्होंने जवाब दिया- दिन का 5 प्रतिशत से कम समय। अगर थोड़ी गणना करके देखें तो मार्टिन कूपर दिन में लगभग पौन घंटे मोबाइल फोन का प्रयोग करते होंगे। चौबीस घंटे के दिन में से नींद के आठ घंटे निकाल दिए जाएँ तो बाकी बचे 16 घंटों का 5 प्रतिशत 48 मिनट होता है।

क्या हमें भी मार्टिन का अनुसरण करना चाहिए? क्या हमारे लिए भी पौन घंटा काफी है? कोई भी फैसला करने से पहले हमें इस बात पर गौर करना होगा कि मार्टिन की उम्र क्या है और उनकी आवश्यकताएँ कैसी हैं। सन् 1928 में जन्मे मार्टिन 94 साल के हैं और साफ है कि व्यावसायिक और निजी स्तर पर मोबाइल फोन के प्रयोग की उनकी ज़रूरतें सीमित हैं। अगर वे एक घंटे से कम समय तक मोबाइल का प्रयोग करते होंगे तो यह भी स्पष्ट है कि वे उसका ज्यादातर इस्तेमाल फोन पर बातचीत के लिए करते होंगे। वीडियो, संगीत, सोशल मीडिया, इंटरनेट खोज, ईमेल, वर्चुअल मीटिंग्स, शिक्षा आदि के लिए या तो वे इनका इस्तेमाल ही नहीं करते होंगे या फिर बेहद कम। आज डिजिटल तकनीकों से जुड़े आम आदमी की ज़रूरतें उनसे कहीं ज्यादा हैं।

तो आपको और हमें अपने दिन का कितना समय मोबाइल फोन को देना चाहिए? इस सवाल का जवाब जानने से पहले भारत में मोबाइल फोन के प्रयोग के डेटा पर एक नज़र डालते हैं। हाल ही में सन 2021 के आँकड़े आए हैं जिन्हें एप एनी नामक मोबाइल डेटा और विश्लेषण फर्म ने जारी किया है। इनके अनुसार भारत का आम मोबाइल उपभोक्ता औसतन 4.7 घंटों के

लिए मोबाइल फोन का प्रयोग करता है। एक साल पहले यह अवधि 4.5 घंटे थी और दो साल पहले 3.7 घंटे। जाहिर है कि कोविड-बाद के काल में मोबाइल फोन का इस्तेमाल बढ़ता चला गया है। अगर हम दिन में अपने सक्रिय घंटों की संख्या 16 मानकर चलें तो हम अपनी सक्रियता के घंटों का लगभग 30 प्रतिशत हिस्सा मोबाइल फोन पर बिता रहे हैं। मतलब यह हुआ कि हर सप्ताह में दो दिन, हर महीने में नौ दिन और हर साल में 109 दिन मोबाइल फोन की भेंट चढ़ रहे हैं। जरा कल्पना कीजिए कि अगर आपको हर साल 109 दिन दे दिए जाएँ और कहा जाए कि इस अवधि में आप अपना मनचाहा काम कर सकते हैं तो आप क्या कुछ नहीं कर डालेंगे। लेकिन यह समय मोबाइल के खाते में जा रहा है।

सन् 2021 के आंकड़ों के अनुसार मोबाइल फोन पर औसतन लगाए गए घंटों के लिहाज से हम भारतीय दुनिया में पाँचवें नंबर पर हैं। ब्राजील, इंडोनेशिया, दक्षिण कोरिया और मैक्सिको के बाद। ध्यान देने की बात यह है कि इस मामले में हम अमेरिका सहित ज्यादातर विकसित देशों और चीन से भी आगे हैं। दूसरी तरफ मोबाइल एप्लीकेशनों को डाउनलोड करने के मामले में भारत चीन के बाद दुनिया में दूसरे नंबर पर है। हमारे यहाँ का रुझान दुनिया के रुझान के विपरीत है जहाँ 2021 के अंत में मोबाइल फोन पर बिताए जाने वाले घंटों की संख्या में 6.5 प्रतिशत की गिरावट आई है। जाहिर है कि इस समय दुनिया में मोबाइल फोन और उसके जरिए किए जाने वाले हर किस्म के कारोबारों के लिए अगर सबसे ज्यादा लाभदायक कोई देश है तो वह भारत है।

यह उन सब कंपनियों और लोगों के लिए बहुत अच्छा है जो सौ करोड़ लोगों के औसतन 102 घंटों के सालाना मोबाइल प्रयोग से फायदा उठाने की स्थिति में हैं, जैसे- मोबाइल फोन एप्लीकेशन बनाने वाली कंपनियाँ, कन्टेन्ट बनाने वाले लोग, फोन के जरिए शिक्षा, मनोरंजन आदि मुहैया कराने वाली फर्में, इस उपकरण के जरिए अपना कारोबार करने वाले संस्थान आदि। मोबाइल फोन बनाने वाली कंपनियों और दूरसंचार सेवा प्रदाताओं के लिए भी यह स्वर्ण काल है। लेकिन उपभोक्ता के लिए? क्या उपभोक्ता अपने समय का अच्छा इस्तेमाल कर रहा है? और क्या इतना समय मोबाइल फोन पर बिताना उसके बुनियादी कामकाज, सामाजिक संबंधों और निजी सेहत के लिए अच्छा है? बिल्कुल नहीं। यहाँ हम फिर से मार्टिन कूपर की सलाह की तरफ लौट आते हैं जिन्होंने कहा है कि मोबाइल छोड़ो, जिंदगी जियो दोस्तो!

तो एक आम भारतीय के लिए मोबाइल फोन पर बिताया गया कितना समय उचित होगा? इस सवाल का जवाब पाना मुश्किल है क्योंकि हर एक व्यक्ति के लिए मोबाइल फोन की उपयोगिता और ज़रूरत अलग-अलग हो सकती है। लेकिन पाँच घंटे? वह सचमुच बहुत अधिक है।

■

चित्र और चित्रकार

चित्रकार : अमित कल्ला
ट्रांसेंडिंग फॉर्म
36x48 इंच, ऐक्रेलिक ऑन कैनवस
वर्ष : 2022